महापुरुषों के
प्रेरक प्रसंग
भाग-१
ऐसी जिंदगी बनाओ,
जो आदर्श व
अनुकरणीय हो।
विश्व में अपने
पदचिह्न छोड़ जाओ,
जिन्हें देखकर
आगामी संतति
अपना मार्ग ढूँढ सके।
विश्ववंदनीय संत श्री
आसारामजी बापू

प्रातःस्मरणीय पूज्य

संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचनों व

सत्साहित्य से संकलित

महापुरुषों के

प्रेरक प्रसंग

(भाग-1)

....

संपर्कः श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आसारामजी आश्रम

संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-380005

फोनः (079) 39877788, 27505010,11

आश्रम रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत-395005, फोनः (0261) 2772201,2

वन्दे मातरम् रोड, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, नई दिल्ली-60

फोनः (011) 25729338, 25764161

पेरुबाग, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई-400063, फोनः (022) 26864143,44

Email: ashramindia@ashram.org Website: http://www.ashram.org

Owned by Mahila Utthan Trust

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निवेदन

स्मृति की एक विशेषता यह है कि वह रुचिकर को तुरंत स्वीकार करती है और उसे दृढ़ता से अपने में सँजोये रखती है। यही कारण है कि ऋषियों, संतजनों एवं शास्त्रकारों ने अपने उपदेशों को भगवान, महापुरुषों एवं भक्तों की जीवनलीलाओं के साथ गुंफित कर आम जनता को परोसा है। वेद हैं तो पुराण भी हैं, गीता है तो भागवत भी है।

सत्प्रसंगों की ऐसी महिमा है कि उन्हें पढ़ने-सुनते उनमें रूचि पैदा होती है। धीरे-धीरे वह रूचि उनमें गुणबुद्धि रखने लगती है। फिर तो यह मार्ग सिद्धान्त-सा बनकर मस्तिष्क में छा जाता है और हम वैसे ही बन जाते हैं। वे राजा हरिश्चन्द्र के जीवन-प्रसंग ही तो थे जिन्होंने गाँधी जी को सत्यनिष्ठा की प्रतिमूर्ति बना दिया ! वे भगवान एवं महापुरुषों की जीवनलीलाएँ ही तो थीं जिन्होंने गूढ़ आत्मज्ञान को केवल सात दिनों में राजा परीक्षित के हृदय में आत्मसात् करा दिया ! वह मनहर नाईं की एक कथा ही तो थी जिसने डिप्टी कलेक्टर सप्रू साहब को सिद्धपुरुष खटखटा बाबा बना दिया ! वे महापुरुषों एवं वीरों के आत्मबल-प्रदाता जीवन प्रसंग ही तो थे जिन्होंने बालक शिवाजी में से आत्मतृप्त कर्मयोगी सम्राट का प्राकट्य कर दिया ! हनुमानजी, ध्रुव, प्रह्लाद आदि कितने-कितनों के उदाहरण दें ? बड़े-बड़े अपराधी लोग भी संतों के जीवन-प्रसंग सुनकर साधु स्वभाव हो गये, पापी पुण्यात्मा बन गये, दुर्जन सज्जन बन गये और सज्जन सत्पद को प्राप्त कर मुक्त हो गये। इतना ही नहीं, सत्पद को प्राप्त सनकादि ऋषि, देवर्षि नारदजी आदि बड़े-बड़े महापुरुष भी सत्प्रसंग सुनने को सदा तत्पर रहते हैं। सर्वज्ञ प्रभु व प्रभु के प्यारे भी इन्हें सर्वथा जानते हुए भी बार-बार सुनने में आनंद का अनुभव करते हैं।

वेद पुरानि बसिष्ट बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।

(रामचरित..,उ.का. 25.1)

ऐसे परम पवित्र, जीवनोद्धारक प्रसंगों को आत्मनिष्ठ परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी के माध्यम से आपके हृदय में उतारने का प्रयास है यह छोटा सा सदग्रन्थ। यह सभी जातियों, वर्णों, मत-पंथ के लोगों के मंगल के लिए है। यह मानवमात्र के उत्थान के लिए है। महापुरुषों के ये जीवन प्रसंग बालक, किशोर, युवक, विद्यार्थी, बड़े-बुजुर्ग तथा सदाचारी-दुराचारी, सगुरे-निगुरे सभी के लिए प्रेरणादायी, हितकारी है।

जिन महापुरुषों के दर्शन का सत्संग-सान्निध्य का फल अवर्णनीय है, उनके जीवन-प्रसंगों को पढ़ने-सुनने, पढ़ाने-सुनाने और जन-जन तक पहुँचाने का फल भी अवर्णनीय एवं अनंत-अनंत है। ऐसी पुनीत सेवा का सुअवसर पाकर श्री योग वेदान्त सेवा समिति धनभागी, बड़भागी हो रही है और आप भी ऐसा लाभ लीजिये।

आपसे प्रार्थना है कि इन प्रसंगों को पढ़ते हुए बीच-बीच में थोड़ा शांत हो जायें और मनन करें। पिघले हुए मोम में डाला हुआ रंग जैसे पक्का हो जाता है, वैसे ही इन मधुर प्रसंगों से द्रवीभूत हुए आपके हृदय में इनका सार उपदेश गहरा उतर जाने दीजिये। इसी प्रार्थना के साथ 'एतत् सर्वं ईश्वरार्पणमस्तु'...... **श्री योग वेदान्त सेवा समिति, अहमदाबाद**

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पीड़ पराई जाणे रे.....

मणिनगर (अहमदाबाद) में एक बालक रहता था। वह खूब निष्ठा से ध्यान-भजन एवं सेवा-पूजा करता था और शिवजी को जल चढ़ाने के बाद ही जल पीता था। एक दिन वह नित्य की नाईं शिवजी को जल चढ़ाने जा रहा था। रास्ते में उसे एक व्यक्ति बेहोश पड़ा हुआ मिला। रास्ते चलते लोग बोल रहे थेः 'शराब पी होगी, यह होगा, वह होगा.... हमें क्या !' कोई उसे जूता सुँघा रहा था तो कोई कुछ कर रहा था। उसकी दयनीय स्थिति देखकर उस बालक का हृदय करूणा से पसीज उठा। अपनी पूजा-अर्चना छोड़कर वह उस गरीब की सेवा में लग गया। पुण्य किये हुए हों तो प्रेरणा भी अच्छी मिलती है। शुभ कर्मों से शुभ प्रेरणा मिलती है। अपनी पूजा की सामग्री एक ओर रखकर बालक ने उस युवक को उठाया ! बड़ी मुश्किल से उसकी आँखें खुलीं। वह धीरे से बोलाः "पानी..... पानी...."

बालक ने महादेवजी के लिए लाया हुआ जल उसे पिला दिया। फिर दौड़कर घर गया और अपने हिस्से का दूध लाकर उसे दिया। युवक की जान-में-जान आयी।

उस युवक ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहाः "बाबू जी ! मैं बिहार से आया हूँ। मेरे पिता गुजर गये हैं और काका दिन-रात टोकते रहते थे कि 'कुछ कमाओगे नहीं तो खाओगे क्या !' नौकरी-धंधा मिल नहीं रहा था। भटकते-भटकते अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पर पहुँचा और कुली का काम करने का प्रयत्न किया। अपनी रोजी-रोटी में नया हिस्सादार मानकर कुलियों ने मुझे खूब मारा। पैदल चलते-चलते मणिनगर स्टेशन की ओर आ रहा था कि तीन दिन की भूख व मार के कारण चक्कर आया और यहाँ गिर गया।"

बालक ने उसे खाना खिलाया, फिर अपना इकट्ठा किया हुआ जेबखर्च का पैसा दिया। उस युवक को जहाँ जाना था वहाँ भेजने की व्यवस्था की। इससे बालक के हृदय में आनंद की वृद्धि हुई, अंदर से आवाज आयीः 'बेटा ! अब मैं तुझे जल्दी मिलूँगा.... बहुत जल्दी मिलूँगा।'

बालक ने प्रश्न कियाः 'अंदर से कौन बोल रहा है ?'

उत्तर आयाः 'जिस शिव की तू पूजा करता है वह तेरा आत्मशिव। अब मैं तेरे हृदय में प्रकट होऊँगा। सेवा के अधिकारी की सेवा मुझ शिव की ही सेवा है।'

उस दिन बालक के अंतर्यामी ने उसे अनोखी प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। कुछ वर्षों के बाद वह तो घर छोड़कर निकल पड़ा उस अंतर्यामी ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए। केदारनाथ, वृंदावन होते हुए वह नैनीताल के अरण्य में पहुँचा।

केदानराथ के दर्शन पाये, लक्षाधिपति आशीष पाये।

इस आशीर्वाद को वापस कर ईश्वरप्राप्ति के लिए फिर पूजा की। उसके पास जो कुछ रूपये-पैसे थे, उनसे वृंदावन में साधु-संतों एवं गरीबों के लिए भंडारा कर दिया और थोड़े-से पैसे लेकर नैनीताल के अरण्य में पहुँचा। लाखों हृदयों को हरिरस से सींचने वाले लोकलाडले परम पूज्य सदगुरू स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू की राह देखते हुए उसने वहाँ चालीस दिन बिताये। गुरुवर लीलाशाहजी बापू को अब पूर्ण समर्पित शिष्य मिला..... पूर्ण खजाना प्राप्त करने की क्षमतावाला पवित्रात्मा मिला.... पूर्ण गुरु को पूर्ण शिष्य मिला....।

स्वामी लीलाशाह जी बापू के श्रीचरणों में बहुत लोग आते थे, परंतु सबमें अपने आत्मशिव को ही देखने वाले, छोटी उम्र में ही जाने-अनजाने आत्मविचार का आश्रय लेने वाले इस युवक ने उनकी पूर्ण कृपा प्राप्त कर आत्मज्ञान प्राप्त किया। जानते हो वह युवक कौन था ?

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये, साँईं आसाराम।।

लाखों-करोड़ों लोगों के इष्ट-आराध्य प्रातः स्मरणीय जग वंदनीय पूज्य संत श्री आसारामजी बापू !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्वामी रामतीर्थ की संयमनिष्ठा

स्वामी रामतीर्थ की ख्याति अमेरिका में दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। लोग उन्हें 'जिन्दा मसीहा' कहते थे और वैसा ही आदर-सम्मान भी देते थे। कई चर्चों, क्लबों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए उन्हें बुलाया जाता था।

उनके व्याख्यानों में बहुत भीड़ होती थी। बड़े-बड़े प्राध्यापक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, वकील, धार्मिक जनता और पादरी इत्यादि सभी प्रकार के लोग उनके विचार सुनने के लिए आया करते थे। कभी-कभी तो इतनी भीड़ हो जाती थी कि हॉल में खड़े होने तक की जगह नहीं रहती थी। इस भीड़ में पुरुष-महिलाएँ सभी सम्मिलित होते थे। कभी-कभी पुरुषों से महिलाएँ अधिक हो जाया करती थीं, जो बहुत ध्यान से स्वामीजी का व्याख्यान सुनती थीं।

व्याख्यान के अंत में स्वामी रामतीर्थ श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर भी देते थे। एक शाम को मनोरिना नाम की एक सुन्दर युवती ने अपने प्रश्नों के लिए स्वामी जी से अलग समय माँगा। स्वामी जी ने दूसरे दिन सुबह मिलने को कहा।

दूसरे दिन वह युवती स्वामी रामतीर्थ से मिलने के लिए उनके निवास स्थान पर आयी। उसने स्वामी जी से कहाः "मैं एक धनी पिता की पुत्री हूँ। मैं संसार भर में आपके नाम से कॉलेज, स्कूल, पुस्तकालय और अस्पताल खोलना चाहती हूँ। सारी दुनिया में आपके नाम से मिशन खुलवा दूँगी और प्रत्येक देश तथा नगर में आपके वेदांत के प्रचार का सफल प्रबंध करवा दूँगी।"

स्वामी रामतीर्थ ने उसके उत्तर में इतना ही कहा कि "दुनिया में जितने भि धार्मिक मिशन है, वे सब राम के ही मिशन हैं। राम अपने नाम की छाप से कोई अलग मिशन चलाना नहीं चाहता क्योंकि राम कोई नयी बात तो कहता नहीं है। राम जो कुछ कहता है, वह शाश्वत सत्य है। राम के पैदा होने से हजारों वर्ष पूर्व वेदों और उपनिषदों ने दुनिया को यही संदेश सुनाया है, जो राम आप लोगों के समक्ष यहाँ अमेरिका में प्रस्तुत कर रहा है। नाम तो केवल एक ईश्वर का ही ऐसा है, जो सदा-सदा रहेगा। व्यक्तिगत नाम तो ओस की बूँद की तरह नाशवान है।"

उस युवती ने जब बार-बार खैराती अस्पताल और कॉलेज इत्यादि खोलने तथा भारतीय विद्यार्थियों की सहायता की बात कही, तब स्वामी रामतीर्थ ने बहुत शांतिपूर्ण ढंग से

पूछा कि "आखिर आपकी आंतरिक इच्छा क्या है ? आप चाहती क्या हैं ?" इस सीधे प्रश्न पर उस युवती ने स्वामी रामतीर्थ को घूरकर देखा, कुछ झिझकी व शर्मायी। फिर रहस्यमय चितवनि से देखकर मुस्करायी और बोली कि "मैं कुछ नहीं चाहती। केवल मैं अपना नाम मिसेज राम लिखना चाहती हूँ। मैं आपके नजदीक-से-नजदीक रहकर आपकी सेवा करना चाहती हूँ। बस, केवल इतना ही कि आप मुझे अपना लें।"

स्वामी रामतीर्थ अपने स्वभाव के अनुसार खिलखिलाकर हँस पड़े और बोलेः "राम न तो मास्टर है, न मिस। न मिस्टर है, न मिसेज। जब राम मास्टर ही नहीं तो उसकी मिसेज होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता !"

वह युवती लज्जित होकर व्याकुल हो उठी। उसकी प्यारभरी एक मुस्कराहट से अन्य लोग अपनी सुध खो बैठे थे और यह भारतीय स्वामी उसकी प्रार्थना का यों अनादर कर रहा है ! वह खीझकर बोलीः "जब तुम मास्टर और मिस्टर कुछ नहीं हो तो तुम क्या हो ?" स्वामी रामतीर्थ फिर मुस्कराये और बोलेः "राम एक मिस्ट्री है, एक रहस्य है।" वह युवती अब बिल्कुल बौखला उठीः "नहीं, नहीं राम ! मैं फिलॉस्फी नहीं चाहती। मैं तुम्हें दिल से प्यार करती हूँ। मुझे आत्महत्या से बचाओ। मैं तुमसे नजदीक का रिश्ता चाहती हूँ।"

स्वामी रामतीर्थ शांतिपूर्वक बोलेः "ठीक है, मुझे मंजूर है।" युवती के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गयी। स्वामी रामतीर्थ ने कहा कि "मैं तुमसे नजदीक-से-नजदीक तो हूँ ही। कहने को हम दोनों अलग-अलग दिखायी देते हैं किंतु आत्मा के रिश्ते से हम तुम दोनों एक ही हैं। इससे और ज्यादा नजदीक का रिश्ता क्या हो सकता है !" युवती इस उत्तर से पागल हो उठी। वह कहने लगीः "फिर वही फिलॉस्फी !" उसने परेशानी दिखलाते हुए कहा कि "मैं आत्मा का रिश्ता नहीं चाहती। मैं तुमसे शारीरिक नजदीकी का (हाड़-मांस का) रिश्ता चाहती हूँ। राम ! मुझे निराश मत करो। मैं तुमसे प्यार की भीख माँगती हूँ। बस, और कुछ नहीं।"

स्वामी रामतीर्थ शांत भाव से बैठे थे। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहाः "जानती हो हाड़ और मांस का नजदीक-से-नजदीक का रिश्ता माँ और बेटे का ही होता है। माँ के खून और हाड़-मांस से बेटे का खून और हाड़-मांस बनता है। बस, आज से तुम मेरी माँ हुई और मैं तुम्हारा बेटा।"

यह उत्तर सुनकर युवती ने अपना माथा पीट लिया और बोलीः "आपने पूर्णरूप से परास्त कर दिया। राम ! तुम्हारा दिल पत्थर का है। सचमुच मैं पागल हो जाऊँगी ! मैं क्या करूँ स्वामी ! मैं क्या करूँ ?" युवती ने अपनी दोनों हथेलियाँ अपनी दोनों आँखों पर रखीं और फूट-फूटकर रोने लगी। उधर स्वामी रामतीर्थ ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं और वे समाधिस्थ हो गये। जब उनकी समाधि खुली तो उन्होंने देखा कि वह युवती कमरे से बाहर जा चुकी थी।

उस घटना के पश्चात वह युवती बराबर स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों में आती तो रही, किंतु दूर एक कोने में बैठकर रोती रहती थी। एक दिन स्वामी रामतीर्थ ने व्याख्यान के पश्चात उसे अपने पास बुलाकर बहुत समझा-बुझाकर शांत कर दिया। बाद में वह स्वामी रामतीर्थ की भक्त बन गई और उनकी इण्डो-अमेरिकन सोसाइटी की एक प्रमुख संरक्षक भी रही।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भगवान के लिए ही रोयें

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)

हरिबाबा से एक भक्त ने कहाः "महाराज ! यह अभागा, पापी मन रूपये पैसों के लिए तो रोता पिटता है लेकिन भगवान अपना आत्मा हैं, फिर भी आज तक नहीं मिलि इसके लिए रोता नहीं है। क्या करें ?"

हरिबाबाः "रोना नहीं आता तो झूठमूठ में ही रो ले।"

"महाराज ! झूठमूठ में भी रोना नहीं आता है तो क्या करें ?"

महाराज दयालु थे। उन्होंने भगवान के विरह की दो बातें कहीं। विरह की बात करते-करते उन्होंने बीच में ही कहा कि "चलो, झूठमूठ में रोओ।" सबने झूठमूठ में रोना चालू किया तो देखते-देखते भक्तों में सच्चा भाव जग गया।

झूठा संसार सच्चा आकर्षण पैदा करके चौरासी के चक्कर में डाल देता है तो भगवान के लिए झूठमूठ में रोना सच्चा विरह पैदा करके हृदय में प्रेमाभक्ति भी जगा देता है।

अनुराग इस भावना का नाम है कि "भगवान हमसे बड़ा स्नेह करते हैं, हम पर बड़ी भारी कृपा रखते हैं। हम उनको नहीं देखते पर वे हमको देखते रहते हैं। हम उनको भूल जाते हैं पर वे हमको नहीं भूलते। हमने उनसे नाता-रिश्ता तोड़ लिया है पर उन्होंने हमसे अपना नाता-रिश्ता नहीं तोड़ा है। हम उनके प्रति कृतघ्न हैं पर हमारे ऊपर उनके उपकारों की सीमा नहीं है। भगवान हमारी कृतघ्नता के बावजूद हमसे प्रेम करते हैं, हमको अपनी गोद में रखते हैं, हमको देखते रहते हैं, हमारा पालन-पोषण करते रहते हैं।' इस प्रकार की भावना ही प्रेम का मूल है। अगर तुम यह मानते हो कि 'मैं भगवान से बहुत प्रेम करता हूँ लेकिन भगवान नहीं करते' तो तुम्हारा प्रेम खोखला है। अपने प्रेम की अपेक्षा प्रेमास्पद के प्रेम को अधिक मानने से ही प्रेम बढ़ता है। कैसे भी करके कभी प्रेम की मधुमय सरिता में गोता मारो तो कभी विरह की।

दिल की झरोखे में झुरमुट के पीछे से जो टुकुर-टुकुर देख रहे हैं दिलबर दाता, उन्हें विरह में पुकारोः 'हे नाथ !.... हे देव !... हे रक्षक-पोषक प्रभु !..... टुकुर-टुकुर दिल के झरोखे से देखने वाले देव !.... प्रभुदेव !... ओ देव !... मेरे देव !.... प्यारे देव !..... तेरी प्रीति, तेरी भक्ति दे..... हम तो तुझी से माँगेंगे, क्या बाजार से लेंगे ? कुछ तो बोलो प्रभु !...'

कैसे भी उन्हें पुकारो। वे बड़े दयालु हैं। वे जरूर अपनी करूणा-वरूणा का एहसास करायेंगे।

तुलसी अपने राम को रीझ भजो या खीज।
भूमि फैंके उगेंगे, उलटे सीधे बीज।।

विरह से भजो या प्रेमाभक्ति से, जप करके भजो या ध्यान करके, उपवास, नियम-व्रत करके भजो या सेवा करके, अपने परमात्मदेव की आराधना ही सर्व मंगल, सर्व कल्याण करने वाली है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

इष्ट की लीला का श्रवण करना भी उपासना है। इष्ट का चिंतन करना, इष्ट के लिए रोना, मन ही मन इष्ट के साथ खेलना-ये सभी उपासनाएँ हैं। ऐसा उपासक शरीर की बीमारी के वक्त सोये-सोये भी उपासना कर सकता है। उपासना सोते-सोते भी हो सकती है, लेटे-लेटे भी हो सकती है, हँसते-हँसते भी हो सकती है, रोते-रोते भी हो सकती है। बस, मन इष्टाकार हो जाये।

मेरे इष्ट गुरुदेव थे। मैं नदी पर घूमने जाता तो मन ही मन उनसे बातें करता। मुझे बड़ा मजा आता था। दूसरे किसी देव से प्रत्यक्ष में कभी बात हुई नहीं थी, उसकी लीला देखी नहीं थी लेकिन अपने गुरुदेव पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाह जी भगवान का दर्शन, उनका बोलना-चालना, व्यवहार करना आदि सब मधुर लीलाएँ प्रत्यक्ष में देखने को मिलती थीं, उनसे बातचीत का मौका भी मिला करता था। अतः एकांत में जब अकेला होता तब गुरुदेव के साथ मन ही मन अठखेलियाँ कर लेता। अभी भी कभी-कभी पुराने अभ्यास के मुताबिक घूमते-फिरते अपने साँईं से बातें कर लेता हूँ, प्यार कर लेता हूँ।

पूज्य बापू जी

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विश्वास से प्रभुप्राप्ति

प्राचीन काल की एक घटना हैः

एक बार एक किशोर ग्वाला अपनी गायों को चराने के लिए नदी के किनारे-किनारे उस जंगल में ले गया जहाँ हरी-भरी घास उगी थी। नदी के तट पर बरगद का एक विशाल वृक्ष था, जिसकी घनी एवं शीतल छाया में अनेक राहगीर अपनी थकान मिटाते थे। ग्वाला भी अपने गायों को चरने के लिए जंगल में छोड़कर उस वृक्ष की शीतल छाया में आराम करने के लिए बैठ गया।

मध्याह्न के समय उसने देखा कि एक साधुबाबा कहीं से आये और उन्होंने नदी में स्नान किया। इसके बाद वे उस विशाल वटवृक्ष की शीतल छाया में आसन बिछाकर बैठ गये। फिर उन्होंने दोनों आँखें बंद करके, नाक दबाकर कुछ क्रियाएँ कीं। वह ग्वाला साधुबाबा के इन क्रियाकलापों को ध्यानपूर्वक देखता रहा। जब संध्या-वंदन करके वे वहाँ से जाने की तैयारी करने लगे, तब उस ग्वाले ने बाबा के पास जाकर इन यौगिक क्रियाओं के विषय में पूछा।

उन्होंने कहाः "ऐसा करके मैं भगवान से बातें कर रहा था।"

ग्वालाः "क्या ऐसा करने से भगवान सचमुच में आते हैं और बातें करते हैं ?"

सिर हिलाकर ग्वाले के प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में देते हुए बाबा आगे बढ़ गये। उनकी इतनी ऊँची स्थिति नहीं थी के वे भगवान से बातें कर सकें परंतु उन्होंने उस भोले-भाले ग्वाले को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसा कह दिया।

जब साधु वहाँ से चले गये, तब ग्वाला भी वैसी ही क्रियाएँ करने लगा परंतु उसको भगवान का कुछ पता नहीं चला। फिर भी वह दृढ़ निश्चय करके बैठ गया कि 'बस, आज

भगवान के दर्शन करने ही हैं।' उसने सोचा कि 'वे साधु भगवान से बातें कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता !'

तब ग्वाले ने पुनः अपनी दोनों आँखें बंद कर लें और नाक को जोर-से दबा लिया। ऐसा करने से उसकी हृदयगती धीमी पड़ गयी तथा प्राण निकलने की नौबत आ गयी।

इधर भगवान शंकरजी का आसन डोलने लगा। उन्होंने ध्यान में देखा कि किशोर ग्वाला भगवान से बातें करने के लिए हठपूर्वक आँखें बंद करके व नाक दबाकर बैठा है।

उस अबोध व निर्दोष ग्वाले को अकाल मृत्यु के मुँह में जाते देख भगवान शंकर उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान ने ग्वाले से कहाः "वत्स ! आँखें खोलो, मैं आ गया हूँ। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ।"

ग्वाले ने आँखें बंद रखते हुए इशारे से पूछा कि 'आप कौन हैं ?'

भगवानः "मैं वही भगवान हूँ जिसके लिए तुम आँखें बंद करके नाक दबाये बैठे हो।"

ग्वाले ने झट-से आँखें खोलीं और श्वास लेना शुरू किया परंतु उसने कभी भगवान को देखा तो था नहीं। अतः वह कैसे पहचानता कि ये ही सचमुच में भगवान हैं। उसने भगवान को पेड़ के साथ रस्सी से बाँध दिया और साधु को बुलाने के लिए दौड़ता हुआ गया। साधु अभी थोड़ी ही दूर पहुँचे थे, उन्हें रोककर ग्वाले ने सारी घटना कह सुनायी। साधु झटपट वहाँ पहुँचे परंतु जिनके जीवन में झूठ-कपट होता है, विश्वास की कमी होती है, साधन-भजन तो करते हैं परंतु दृढ़ निश्चय एवं प्रेम से नहीं करते उनको भगवान क्यों दिखेंगे ! साधु को भगवान नजर ही नहीं आ रहे थे जबकि ग्वाले को स्पष्ट दिखायी दे रहे थे।

साधु ने कहा "मुझे तो कुछ नजर नहीं आ रहा है।"

तब ग्वाले ने इसका कारण भगवान से पूछा। भगवान ने कहाः "यंत्र की नाईं कोई हजार वर्ष भी जप-तप करे फिर भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, परंतुत जो श्रद्धा, प्रीति और सच्चाईपूर्वक क्षण भर के लिए भी मुझे भजता है, मैं उसे शीघ्र दर्शन देता हूँ।"

भगवान ग्वाले से जो कह रहे थे वह साधु को भी सुनायी दे रहा था। उनकी आँखों से पश्चाताप के आँसू बहने लगे। वे फूट-फूटकर रोने लगे। इससे द्रवित होकर ग्वाले ने भगवान से उन्हें माफ करने के लिए प्रार्थना की।

ग्वाले की श्रद्धा व परदुःखकातरता के भाव से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने साधुबाबा को माफ कर दिया और उन्हें भी दर्शन दिये। फिर दोनों को आशीर्वाद देकर वे अंतर्धान हो गये।

आप उस ग्वाले की तरह नाक दबाकर हठ करें इसलिए वह कथा नहीं कही गयी है, बल्कि अपने मन को समझायें कि यदि एक अनपढ़ ग्वाला साधारण साधु की देखा-देखी ही सही, विश्वासपूर्वक प्रभु को पुकारता है और उसे प्रभु के दर्शन हो जाते हैं तो फिर यदि कोई व्यक्ति सच्चे उच्चकोटि के महापुरुष, ईश्वर को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता सदगुरू की आज्ञानुसार साधना करेकक तो उसे प्रभुप्राप्ति में देर कितनी !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

साधना में अति आवश्यक है अपने इष्ट अथवा गुरु पर अटूट विश्वास रखना। इसको साधना का प्राण कहा गया है। इसके अभाव में संदेह छाया रहता है। विश्वास अपने-आप में एक शक्ति है। विश्वास द्वारा उत्पन्न ऊर्जा अनेक विपदाओं में सफलता दिलाती है। इस अवलम्बन को मजबूती से पकड़े रहने वाले आशावादी साधनों के अभाव में भी ऊँचे उठते, आगे बढ़ते देखे गये हैं। रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि जी ने श्रद्धा और विश्वास को 'भवानी-शंकर' की उपमा दी है। साधना में विशेषरूप से इस तथ्य को समझा जाना चाहिए कि विश्वासी को साधना में सहज सफलता प्राप्त करते देखा गया है, जबकि अविश्वासी का सही मंत्र और सही प्रयोग भी अनेक बार असफल होते देखा गया है।

पूज्य श्री

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मत कर रे गर्व-गुमान....

पूज्य बापू जी के सत्संग प्रवचन से

जब आपकी प्रवृत्ति प्रभुप्रेरित होती है तो वह भक्ति बन जाती है और जब वासनाप्रेरित होती है तो बंधन बन जाती है।

नारदजी पुरुषार्थ करके काम पर विजय पाने में थोड़ा सफल हो गये। आये शिवजी के पास और बोलेः "जैसे आप कामविजयी हैं, ऐसे हम भी हो गये हैं।"

शिवजीः "मुझे बोला तो बोला, दूसरे किसी को बोलना नहीं।"

किंतु सफलता के मद में फूले नारदजी गये भगवान नारायण के पास और बोलेः "प्रभु ! जैसे आप कामविजयी हैं, ऐसे अब हम भी हो गये हैं।"

भगवान ने देखा कि शिवजी ने मना किया था फिर भी बता रहे हैं। भगवान ने लीला रची और उनकी माया ने विश्वमोहिनी का रूप ले लिया। उसके स्वयंवर का आयोजन किया गया। नारद जी ने उसके लक्षणों को देखा तो सोचा कि 'अरे, इसको तो जो वरेगा वह भगवान के समान वैभवशाली हो जायेगा !"

वे गये भगवान नारायण के पास और बोलेः "भगवान ! मेरा रूप ऐसा बना दीजिए, जिससे विश्वमोहिनी से मेरी शादी हो जाये और मेरा मंगल हो।"

शादी करने की वासना भी है और मंगल हो यह प्रार्थना भी है। ऐसे में भगवान क्या करें ? भगवान ने कहाः

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार।।

'हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वहीं करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता।'

श्रीरामचरित. बा.कां. 132

भगवान ने नारद का धड़ तो अपने समान बना दिया और चेहरा बंदर का दे दिया।

नारदजी विश्वमोहिनी के स्वयंवर में पधारे। शिवजी ने अपने गणों को स्वयंवर में भेजा कि 'देखो, वहाँ नारायण की क्या लीला हो रही है ?' शिवजी के गण ब्राह्मण के रूप में

स्वयंवर में पहुँचे और जहाँ नारदजी बैठे थे, वहाँ उनके दायीं तथा बायीं और एक-एक गण बैठ गये।

नारदजी ने सोचा कि 'अब इतने सारे युवक क्यों बैठे हैं ? जब मैं भगवान का वरदान लेकर इतना खूबसूरत होकर आ गया हूँ तो विश्वमोहिनी मुझे ही हार पहनायेगी। फिर ये लोग समय व्यर्थ क्यों गँवा रहे हैं ? विश्वमोहिनी जैसे ही सभा में प्रवेश करेगी और मुझे देखेगी, सीधे ही काम बन जायेगा !'

विश्वमोहिनी ने जब सभा में प्रवेश किया तो चौंकी कि 'क्या मुझसे शादी करने के लिए पिता जी ने बंदर को भी बुलाया है !' उसको झटका लगा। उसने दिशा बदल दी। नारदजी ने सोचा कि 'मेरा तेज न सह सकी इसलिए इसने दिशा बदल दी है।' नारदजी उठकर उस दिशा में गये जहाँ विश्वमोहिनी गयी थी। वे गण भी साथ में गये। वे हँस रहे थे।

जब विश्वमोहिनि ने किसी को वैजयंती नहीं पहनायी तो भगवान नारायण वहाँ राजा का रूप लेकर जा पहुँचे और विश्वमोहिनी ने उन्हें वैजयन्ती पहना दी। वे उसे अपने साथ ले गये। यह देखकर नारदजी व्याकुल हो गये।

शिवजी के गणों ने उनसे कहाः "नारदजी ! जरा आप दर्पण में अपना मुँह तो देखें।"

बंदर का सा मुँह देखकर नारदजी कोपायमान हो गये और भगवान नारायण के पास जाकर बोलेः "अच्छा, आपने मेरे साथ ऐसा किया और मेरी होने वाली पत्नी को आप ले गये तो आपकी पत्नी को भी कोई ले जायेगा। मैं आपको शाप देता हूँ।"

तब भगवान ने नारदजी को समझाया कि "नारदजी ! आपको कामविजय का अहं हो गया था, इसीलिए मुझे सब रचना पड़ा। बाकी देखो, वह नगर भी नहीं है और विश्वमोहिनी भी नहीं है। यह केवल मेरी माया का खेल था।"

नारदजीः "प्रभो, मैंने आवेश में आकर आपको शाप दे दिया कि कोई आपकी पत्नी को ले जायेगा, किंतु मेरे जैसे चेहरे वाले ही आपकी पत्नी को लाने की सेवा भी पायेंगे और आपके प्रिय हो जायेंगे।"

"नारदजी ! ऐसा ही होगा। मैं भक्तन को दास..... भक्तों की बात सत्य हो। जो मेरी प्रीति से विभक्त नहीं होते उनकी बात मिथ्या कैसे हो सकती है !"

वही बात श्रीरामावतार में सत्य हुई। श्रीरामजी की पत्नी सीता जी को रावण ले गया। उन्हें लाने में नारदजी के उस समय के चेहरे वाले साथियों की ही जरूरत पड़ी-हनुमान जी एवं अन्य बंदरों की।

नारदजी की यह कथा हमको सार बात समझाने के लिए है। नारदजी मखौल के नहीं, प्रणाम के पात्र हैं। नारदजी से हम क्षमायाचना करते हैं। यदि कोई नारदजी की अवज्ञा करता है या उनको छोटा मानता है तो यह उसका छोटापन है। इन महापुरुष ने अपने इस जीवन-प्रसंग द्वारा यह लिख दिया कि आपको किसी भी सफलता का अहं है तो भगवान क्या करते हैं, देखो !

भगवान लीला करके भी हम लोगें को सावधान करते हैं कि सफलता मिले तब भी जहाँ से साफल्य हेतु सत्ता मिलती है, उस अंतरात्मा में गोता मारो। विफलता आये तो उसी को पुकारो कि 'तू मेरी बुद्धि में सत्य भर देष हमारे हित के लिए तू न जाने क्या-क्या लीलाएँ

रचता है.... कैसे-कैसे अवतार लेता है.... संतों के हृदय में बैठकर कैसी-कैसी प्रेरणाएँ देता है अथवा हमें रोकता-टोकता है और हमारे हृदय में भी कैसे-कैसे प्रोत्साहन भरता है ! प्रभु ! तेरी जय हो।'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

रीछ की योनि से मुक्ति

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

एक बार गुरू गोविन्दसिंह जी के यहाँ एक कलंदर आया। जो रीछ को पकड़कर नचाते हैं, उन्हें कलंदर(मदारी) कहते हैं। उस समय गुरु गोविंदसिंह जी आराम की मुद्रा में बैठे थे और एक सेवक चँवर डुला रहा था। भालू का खेल देखकर वह सेवक खूब हँसा और बोलाः "किस पाप के कारण इसकी यह गति हुई ?"

गुरु गोविन्दसिंह जी ने उससे कहाः "यह तेरा बाप है।"

सेवकः "मैं मनुष्य हूँ, यह रीछ मेरा बाप कैसे ?"

"यह पिछले जन्म में तेरा बाप था। यह गुरु के द्वार तो जाता था लेकिन गुरु का होकर सेवा नहीं करता था। अपना अहं सजाने के लिए, उल्लू सीधा करने के लिए सेवा करता था, इसलिए इसे रीछ बनना पड़ा है।

एक दिन सत्संग पूर्ण होने के बाद प्रसाद बाँटा जा रहा था। इतने में वहाँ से किसान लोग बैलगाड़ियाँ लेकर निकले। उन्हें गुरुजी के दर्शन हो गये। अब गुरुद्वार का एक-एक कौर प्रसाद लेते जायें।' वे बैलगाड़ी से उतरे, बैलों को एक ओर खड़ा किया और इससे बोलेः "हमें प्रसाद दे दो।"

इसने उधर देखा ही नहीं। वे भले गरीब किसान थे लेकिन भक्त थे। उन्होंने दो तीन बार कहा किंतु प्रसाद देना तो दूर बल्कि इसने कहाः 'क्या है ? काले-कलूट रीछ जैसे, बार-बार प्रसाद माँग रहे हो, नहीं है प्रसाद !'

वे बोलेः 'अरे भाई ! एक-एक कण ही दे दो। जिनके हृदय में परमात्मा प्रकट हुए हैं, ऐसे गुरुदेव की नजर प्रसाद पर पड़ी है। **ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी।** थोड़ा सा ही दे दो।'

इसने कहाः 'क्या रीछ की तरह 'दे-दे' कर रहे हो ! जाओ नहीं देता !'

उसमें एक बूढ़ा बुजुर्ग भी था। वह बोलाः 'हमें गुरु के प्रसाद से वंचित करते हो, हम तो **रीछ** नहीं हैं किंतु जब गुरुसाहब तुम्हें रीछ बनायेंगे तब पता चलेगा !' किसान लोग बददुआ देकर चले गये और कालांतर में तेरा बाप मर कर रीछ बना। फिर भी इसने गुरुद्वार की सेवा की थी, उसी का फल है कि कई रीछ जंगल में भटकते रहते हैं किंतु यह कलंदर के घर आया और यहाँ सिर झुकाने का इसे अवसर मिला है। लाओ, अब इसका गुनाह माफ करते हैं।"

गुरुदेव ने पानी छाँटा। सेवक ने देखा कि गुरुसाहब की कृपा हुई, रीछ के कर्म कट गये और उस नीच चोले से उसका छुटकारा हुआ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मन की ही खाना तो देशी घी के लड्डू क्यों नहीं खाना !

पूज्य बापू जी के सत्संग प्रवचन से

आप जैसे विचार करते हैं, वैसे ही विचार वातावरण में से खिंचकर आपके पास आ जाते हैं। जमीने में जैसा बीज बोओ, उसी प्रकार का पोषण धरती और वातावरण से मिलता है एवं बीज फलित होता है। ऐसे ही यदि आपका दिल प्रफुल्लित और खुश होता है तो वातावरण में से भी प्रफुल्लता और प्रसन्नता आती है। .....तो हम बढ़िया विचार क्यों न करें !

मैंने एक कहानी सुनी हैः

दो मित्र थे। एक मुसलमान था और दूसरा हिन्दू। दोनों साधू बन गये और यात्रा पर निकले। यात्रा करते-करते शाम हुई। किसी गाँव में पड़ाव डाला। आसपास में कोई भक्त नहीं था इसलिए दोनों ने मानसिक भोजन बनाया। हिन्दू साधु ने मानसिक भोजन में लड्डू, पूड़ियाँ और दाल चावल बनाये तथा मन ही मन भोग लगाकर खाने लगा। मुसलमान ने भी मानसिक भोजन बनाकर खाया तो वह 'तौबा' पुकारने लगा, उसकी आँखों में पानी भी आ गया।

हिन्दू साधु ने पूछाः "ऐसा तो क्या बनाकर खाया की आँखों में से पानी आ रहा है.... तौबा पुकार रहे हो ?"

मुसलमान साधुः "मैंने कढ़ी बनायी थी। उसमें हरी मिर्च ज्यादा डल गयी।"

हिन्दू साधुः "जब मन का ही खाना बनाना था तो देशी घी के लड्डू क्यों नहीं बनाये ?"

ऐसे ही जब सारा संसार मन के विचारों से ही चल रहा है तो परेशानी को क्यों पैदा करना ! खुशी पैदा करो, आनंद उभारो, माधुर्य लाओ। मन का माधुर्य तन के लिए भी मधुर वातावरण बना देता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु सौं मिलै, तो गुरु मिले निसंक।

मन ही दाता बनता है, मन ही लालची बनता है। मन ही राजा बनता है और मन ही रंक बनता है। यदि यह मन गुरु से मिले, गुरु के ज्ञान से मिले तो निःसंदेह गुरु बन जायेगा।

मनुष्य है वही कि जो......

पूज्य बापू जी के सत्संग प्रवचन से

मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए जिये।
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी परदुःखकातरता के लिए विख्यात थे। वे सदैव कोई-न-कोई सेवा का मौका खोज ही लेते थे।

एक बार वे रास्ते से गुजर रहे थे। सामने एक ब्राह्मण आँसू बहाता हुआ मिला। विद्यासागर ने उस ब्राह्मण को थाम लिया और पूछाः "क्या बात है जो आपकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं ?"

"अरे भाई ! आप क्या मेरा दुःख करेंगे !"

विद्यासागर ने प्रार्थना करते हुए कहाः "फिर भी भैया ! बताओ न, मेरी जिज्ञासा है।"

ब्राह्मण बोलाः "मैंने अपनी लड़की की शादी में देखा-देखी ज्यादा धन खर्च कर दिया क्योंकि जाति में ऐसा रिवाज है। खर्च के लिए कर्जा लिया। जिस महाजन से कर्जा लिया था, उसने मुझ पर दावा कर दिया है। मैं अदालत में जाकर खड़ा रहूँगा तो कैसा लगेगा। कितनी शर्मनाक घटना होगी वह ! हमारी सात पीढ़ियों में, पूरे खानदान में कभी कोई कोर्ट कचहरी नहीं गया। अब मैं ही ऐसा बेटा पैदा हुआ हूँ कि मेरे बाप, दादा, नाना सबकी नाक कट जायेगी।"

ऐसा कहकर वह सिसक-सिसककर रोने लगा।

विद्यासागर ने पूछाः "अच्छा, महाजन का नाम क्या है ?"

ब्राह्मणः "नाम जानकर आप क्या करेंगे ? अपना दुर्भाग्य मैं स्वयं भोग लूँगा। आप अपने काम में लगें।"

विद्यासागर ऐसा नहीं बोले कि 'मैं कर्जा चुका दूँगा। मैं सब ठीक कर दूँगा। मैं विद्यासागर हूँ....' परोपकारी पुरुष सेवा का अभिमान नहीं करते, न ही प्रशंसा चाहते हैं।

विद्यासागर ने कहाः "कृपा करके बताओ तो सही।"

ब्राह्मण से बहुत विनती करके उन्होंने महाजन का नाम-पता तथा कोर्ट की तारीख जान ली। जिस दिन ब्राह्मण को कोर्ट जाना था, उससे पहले ही घर बैठे उसे पता लग गया कि उसका केस खारिज हो गया है। क्यों ? क्योंकि महाजन को रूपये मिल गये थे। किसने दिये ? कोई पता नहीं।

आखिर उसे पता लग ही गया कि परदुःखकातर विद्यासागर ही उस दिन उसे सड़क पर मिले थे और उन्होंने ही पैसे भरकर उसे ऋण से मुक्त कराया है।

आजकल के धनाढ्य और देश-विदेश में धन की थप्पियाँ लगाने वाले लोग विद्यासागर की नाईं परोपकार का, परदुःखकातरता का महत्त्व समझें तो उनका और गरीबों का कितना मंगल होगा !

अपने दुःख में रोने वाले ! मुस्कराना सीख ले।
औरों के दुःख-दर्द में आँसू बहाना सीख ले।।
जो खिलाने में मजा है आप खाने में नहीं।
जिंदगी में तू किसी के काम आना सीख ले।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रभु की प्रीति के लिए सेवा करो फिर देखो ! वाहवाही के लिए, अखबार में नाम आये इसलिए तो बहुत लोग सेवाकार्य करके दिखाते हैं, लेकिन नाम की फिक्र न करो। अंतर्यामी ईश्वर सब जानते हैं। छुपकर पाप करने से धड़कनें बढ़ जाती हैं, पाप का फल मिलता है तो छुपकर पुण्य करोगे तो वह प्रसन्न नहीं होगा क्या ? उसकी प्रीति के लिए गरीब-गुरबे की सेवा करो। दाता, दयालु या सेठ होकर नहीं, नेता होकर नहीं, गरीब का होकर गरीब की सेवा करो। दुखियारे का साथी होकर उसकी सेवा करो क्योंकि दुखियारे में भी वही बैठा है। माँ की सेवा करो लेकिन दया धर्म से उनकी सेवा मत करो। 'माँ में भी मेरा अनंत है, पिता में भी मेरा अनन्त है।' इसी प्रकार की भावना से अगर उनकी सेवा करते हो तो तुम्हारी सेवा अनंत तुरंत स्वीकार लेता है, तुरंत हृदय में प्रेरणा देता है और सिंह जैसा बल देता है। मुझे तो कई बार इसके अनुभव हुए हैं। जो भी थोड़ी बहुत सेवा होती तो भीतर से जो भाव उभरता उसे तो वह जाने और मैं जानूँ ! क्या बताऊँ आपको.....!!

पूज्य बापू जी

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

लाला की लीला !

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

एक बड़े अदभुत महात्मा थे। वे कुछ नहीं बोलते, कुछ नहीं करते। आखिर एक बार एक संत ने उनको रिझा लिया कि "महाराज ! आपकी बड़ी ऊँची समझ है, ऊँची पहुँच है परंतु आप कुछ बोलते नहीं, कुछ उपदेश नहीं करते। जैसा भी हो रहा है, आपकी दृष्टि में वह सब अच्छा है, बढ़िया है। महाराज ! आप थोड़ा अपना परिचय दीजिये।"

महात्मा बोलेः "मैं पहले प्रवचन करता था, बड़े जोर-शोर से लोगों को उपदेश देता था कि तुमको ऐसा करना चाहिए, ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए, मुक्ति पानी चाहिए.... विद्वान तो था ही। एक दिन मैं आराम कुर्सी पर बैठा था और तन्द्रा आ गयी। देखा कि मैं बड़ा उपदेशक हूँ। बहुतों को उपदेश दिया कि जप-ध्यान ऐसे किया जाता है, प्रार्थना ऐसे की जाती है, श्लोक ऐसे बोले जाते हैं। उनमें एक आदमी निपट निराला था, कुछ भी नहीं सीख पा रहा था।

मैंने उसे कहाः 'तू कैसा मूर्ख है ! वज्रमूर्ख लगता है।'

प्रार्थना का एक श्लोक 100 बार दुहराया तब बड़ी मुश्किल से वह याद कर पाया। मैंने चैन की साँस ली, हाश ! ऐसे वज्रमूर्ख को भी मैंने भगवान की प्रार्थना सिखा दी। अब उसका उद्धार हो जायेगा।

आगे देखा कि मैं देवलोक में विचरण करने वाला सिद्धपुरुष हो गया। मैं देवदूत की नाईं आकाशमार्ग से मन की गति के समान तीव्रता से चलने वाले विमान में जा रहा था, किंतु आश्चर्य यह था कि वह वज्रमूर्ख मेरी गति से भी तीव्र गति से मेरे पीछे आ रहा था ! मैं विमान में था लेकिन वह तो ऐसे ही आ रहा था !

मैंने आश्चर्य से पूछाः 'अरे, तु कैसे ?'

वज्रमूर्खः 'महाराज ! पहले तो मैं ऐसे ही भगवान से बात कर लेता था कि तू ही सत्य है, मैं और क्या जानूँ ! तू ही दिल की धड़कनें चलाता है, तू ही आँखों से दिखाता है। तू ही भोजन चबवाता है और भोजन को पचाता है..... अब आपने जो श्लोक रटवाया था, मैं उसे

भूल गया। आप कहते हैं कि मैं वज्रमूर्ख हूँ। श्लोक तो याद रहा नहीं। अब बताइये मैं कैसे प्रार्थना करूँ ?'

महात्माः 'महात्मन् ! मैंने आपको पहचाना नहीं, इसीलिए वज्रमूर्ख कहा। आप अपने संकल्पमात्र से मेरी गति से भी आगे पहुँच गये।'

ऐसा कह के मैं प्रणाम करने को उनके चरणों में गिरा तो मैं कुर्सी से नीचे गिर गया। मेरे कच्चे विश्वास को पक्के विश्वास में बदलने के लिए ही लाला ने ऐसी लीला की। तब मैं मौन हो गया। देखता हूँ कि सब उसी की लीला है। यह बुरा है, यह भला है..... यह शुद्ध है, यह अशुद्ध है... जमाना खराब है..... अब तो बस, हम उसके हैं वह हमारा है।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चल पड़े तो चल पड़े....

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

भर्तृहरि महाराज को जब परमात्मा का साक्षात्कार हुआ तो उन्होंने कलम उठायी और 100 श्लोकों वाला एक शतक लिखा-"वैराग्य शतक"। उसका अनुवाद किया पंडित हरदयाल जी ने।

पंडित हरदयाल संस्कृत शास्त्रों का इतना बढ़िया काव्यात्मक अनुवाद करते थे कि कविता में सारा अर्थ स्पष्ट हो जाता था।

एक पंजाबी साधु ने सोचा कि 'जिसकी कविताएँ इतनी प्रभावशाली हैं वह आदमी स्वयं कैसा होगा ?' पूछताछ की तो पता चला कि पंडित हरदयाल की किराने की दुकान है। पूछते-पूछते वह साधु पँहुचा पंडित हरदयाल की दुकान पर और वहाँ बैठे व्यक्ति से पूछः "पंडित हरदयाल आपका नाम है ?"

"हाँ।"

"हम आपकी कविता पढ़कर संत हो गये और आप अभी तक तराजू तौल रहे हो ! क्या रखा है इस तराजू में !"

पंडित हरदयाल उठ के चल पड़े। तराजू में बाट रखने तक को रूके नहीं। जूता चप्पल पहनने को भी नहीं रहे। चल पड़े तो चल पड़े और साधु हो गये। और लगे तो ऐसे लगे कि 'स्व'-स्वभाव में जग गये। ज्ञान, शांति, आत्मसुख के धनी हो गये।

अमीरी की तो ऐसी की सब जर लुटा बैठे।
फकीरी की तो ऐसी की गुरु के दर पे आ बैठे।।

जो धर्माचरण करता है उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। ऐसे शुद्ध हृदय व्यक्ति के चित्त पर संत-वचन का प्रभाव तत्काल पड़ता है, वह उसके हृदय में चोट कर जाता है और उसमें विवेक-वैराग्य का उदय हो जाता है।

संत तुलसीदास जी ने भी कहा हैः **धर्म ते बिरति.... 'धर्म के आचरण में वैराग्य होता है।'**

हमें चाहिए कि ईमानदारी से भगवत्प्रीत्यर्थ कर्तव्यकर्म करें और अपने हृदय को विशुद्ध बनायें, ताकि कोई संत-वचन या शास्त्र-वचन हृदय में चोट कर जाय और जीवन कृतार्थ हो जाये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मैं सत्संग चुराता हूँ

उदयपुर (राजस्थान) के राणा चतुरसिंह सत्संगप्रेमी थे। वे सत्संग में जाते और सत्संग सुनते लेकिन कभी-कभी सत्संग में से धीरे-से खिसक जाते थे। एक दिन गुरु महाराज ने उनसे पूछ ही लियाः

"राणा ! तुम चुपचाप आकर सत्संग में बैठ जाते हो, तुम्हें संतों एवं सत्संग के प्रति श्रद्धा भी है फिर कभी-कभी चुपके-से खिसक जाते हो, क्या बात है ?"

राजाः "महाराज ! सत्संग में कभी ऐसी बढ़िया युक्ति आ जाती है, आप ऐसी बढ़िया बात बोल देते हैं कि उससे बहुत लाभ होता है, मन परमात्मा में शांत हो जाता है। अतः कहीं मन फिर से चंचल न हो जाये इसलिए वह बढ़िया बात चुराकर मैं ले जाता हूँ और एकान्त में जाकर मौन-शांत होकर उस पर विचार करता हूँ।"

महाराजः "तुम्हारा खिसकना भी सत्संग का आदर है। कई भोग सांसारिक कार्य के लिए सत्संग के बीच से उठते हैं, उन्हें सत्संग का अनादर करने का पाप लगता है। लेकिन जो परमात्म-शान्ति के लिए खिसकता है वह तो सत्संग का परम आदर करता है। तुम्हारा चित्त परमात्म-शान्ति में शांत हो, इसीलिए तो सत्संग किया जाता है।"

संतों की संगत करने वाले भक्तजन सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं, उनके जन्म-मरणरूप दुःखों का सदा के लिए नाश हो जाता है।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरूस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च ध्नन्ति सन्तो महाशयाः।।

गंगा जी पाप को, चन्द्रमा ताप को और कल्पतरू दैन्य को नष्ट करने में समर्थ हैं किंतु ब्रह्मज्ञानी संत तो पाप, ताप और दैन्य इन तीनों को नष्ट करने में समर्थ होते हैं।

गंगाजी पापों को दूर करती है परंतु किन पापों को ? पिछले पापों को दूर करती है, आगे होने वाले पापों को दूर नहीं करती। यदि कोई श्रद्धा भक्तिसहित गंगाजी में स्नान करके हाथ जोड़कर हृदय से यह प्रार्थना करेः 'मातेश्वरी गंगे ! मेरे से जानबूझकर अथवा अनजाने में जो पापकर्म हो गये हैं, आप कृपा करके मेरे उन पापों का शमन कर मुझे क्षमा करें।' तो पतित पावनी श्री गंगा माता जी उसके पूर्व के पापों को क्षमा कर देती हैं।

'शशी तापं' चन्द्रमा ताप को दूर करता है। दिन के सूर्य की गर्मी की तपन को रात्रि में चन्द्रमा की शीतल व सुखद चाँदनी शांत करती है, परंतु दूसरे दिन पुनः तेज धूप की किरणों द्वारा तापित होना पड़ता है।

'दैन्यं कल्पतरूः' कल्पवृक्ष दीनता (दरिद्रता) को दूर करता है। कोई पुण्यात्मा कल्पवृक्ष से जितना भी धन माँगे, उसे मिल जाता है परंतु उस धन को यदि वह बुरे व्यसनों में व्यय करना शुरू कर दे तो वह पुनः वैसे का वैसा दीन हो जाता है। कल्पतरू से बाहर सम्पदा

मिलती है लेकिन मानसिक दरिद्रता, विवेकजन्य दरिद्रता नहीं मिटती। जैसे रावण के पास सोने की लंका थी, फिर भी सुख के लिए मानसिक दरिद्रता ने उसे कहीं का नहीं रखा। विभीषण की हनुमानजी के सत्संग से विवेकजन्य दरिद्रता मिटी और भगवान की प्राप्ति हुई।

पापं तापं च दैन्यं च ध्नन्ति सन्तो महाशयाः।

परमात्मा को पाये हुए संत-महापुरुष तो इस जीव के न केवल सम्पूर्ण पाप, ताप और दरिद्रता सदा के लिए समूल नष्ट कर देते हैं, वरन् उसे मानव-जीवन के वास्तविक उद्देश्य परमात्मप्राप्ति के योग्य बना देते हैं।

संतों के पास कोई जिज्ञासु आता है तो वे महापुरुष उसे उसके अधिकार के अनुरूप उपदेश देते हैं और वह पुरुष महात्माओं के बताए हुए उपदेश द्वारा शीघ्र ही साधन-सम्पन्न होकर शुद्ध अंतःकरण वाला बन जाता है, जिसके फलस्वरूप उसके हृदय में परमात्मा का प्राकट्य होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दण्डवत प्रणाम का रहस्य

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

जीवन अहंकार को सजाने के लिए नहीं परमात्मा से प्रीति करने के लिए है। धन का अहंकार, सत्ता का अहंकार, सौंदर्य का अहंकार, बुद्धिमत्ता का अहंकार निरहंकार नारायण साथ में होते हुए भी उससे मिलने नहीं देता। इसलिए तुम इस अहंकार को मिटाने के लिए धर्म ने मंदिर में जाने और भगवान को दण्डवत प्रणाम करने का विधान किया है। मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि आदमी खड़ा रहता है तो उसका अहंकार भी खड़ा रहता है और मन में दबी हुई बातें बताने में वह सिकुड़ता है, पर जब उसको टेबल पर सुलाते हैं और फिर पूछते हैं तो वह कुछ-कुछ बताने लगता है।

एक जापानी युवक घूमता-घामता तिब्बत के एक लामा(बौद्ध आचार्य) के आश्रम में पहुँचा। उस आश्रम में लामा और उनके कई शिष्य रहते थे। युवक ने लामा से कहाः "मैं आपका नाम सुनकर यहाँ आया हूँ और कुछ सीखना चाहता हूँ, कुछ पाना चाहता हूँ।"

लामा ने कहाः "इस आश्रम में सीखने के लिए कुछ नहीं है, पाने के लिए कुछ नहीं है, यह आश्रम तो केवल खाने के लिए है अर्थात् सीखा हुआ भूल जाने के लिए है। अपनी जो कुछ कल्पनाएँ हैं, मान्यताएँ हैं उन्हें खो डालना है। यहाँ कोई रिवाज नहीं है, कोई नियम नहीं है सिवाय एक कड़े नियम के कि प्रत्येक आश्रमवासी अधिष्ठाता को अर्थात् सदगुरु को, जब-जब वे दिख जायें तब-तब दण्डवत प्रणाम करे। बैठे हुए दिख जायें तो दण्डवत करे, घूमते हुए दिख जायें तो दण्डवत... दिन में 10 बार, 20 बार, 50 बार, 100 बार, कभी इससे भी अधिक बार ऐसा अवसर आ सकता है।"

उस युवक ने लिखा हैः

हम जापानी लोग किसी के आगे जल्दी झुकते नहीं हैं, अतः दिन में 10-20 बार दण्डवत करना मेरे लिए बड़ी कठिन बात थी। फिर भी प्रयोग के लिए मैं वहाँ रहने लगा।

पहले 5-10 बार तो बड़ी मेहनत पड़ी, बड़ी तकलीफ हुई किंतु और लोग करते थे तो मैं भी उनके साथ करने लग गया।

2-4 दिन बीते, फिर वह पकड़ और हठ बिखरता गया तथा स्वाभाविक ही दण्डवत होने लगाष फिर कभी गुरुदेव न निकलते तो उनके द्वार पर ही दण्डवत कर लिया करता था। द्वार पर न जाऊ तो उनकी कुटिया के आसपास के वृक्षों को ही दण्डवत कर लिया करता था। फिर तो मुझे दण्डवत करने में इतना मजा आने लगा कि वृक्ष हो चाहे कुटिया, चाहे कुछ भी न हो, कर दिया दण्डवत्.... बस, आनंद-आनंद बरसने लगा।

मेरा समर्पण भाव बढ़ता गया और एक दिन गुरुदेव की कृपा मुझ पर छलकी। तब गुरुदेव ने मुझसे कहाः "अब तेरा काम हो गया है। मैंने अपने दण्डवत् कराने के लिए या अपने अहंकार को पुष्ट करने के लिए यह नियम नहीं रखा। प्रणाम करने वाले को तो मजा आता है लेकिन स्वीकार करने वाला बड़े खतरों से गुजरता है। यदि वह सावधान न रहे तो उसमें देहाभिमान आ सकता है और उसके लिए खतरा पैदा हो सकता है।

यहाँ का दण्डवत प्रणाम का नियम व्यक्तिगत धारणाओं, मान्यताओं और अध्यास को बिखेरने की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में तू उत्तीर्ण हो गया है। अब मेरी हाजिरी के बिना भी तू अपने-आपमें परितृप्त रह सकता है। मेरे आश्रम के पेड़ पौधों के बिना भी तू कुछ हद तक आनंदित रह सकता है।"

यह उपासना की छोटी सी प्रक्रिया मात्र है। तत्त्वज्ञान के बिना पूर्ण ज्ञान का कोई पता ही नहीं चलता। जैसे हनुमान जी को श्रीसीतारामजी के सत्संग से पूर्णता का पता चला। वसिष्ठजी के उपदेश से श्रीरामचन्द्रजी अपने पूर्णता के स्वभाव में प्रतिष्ठित रहते थे।

केवल दण्डवत प्रणाम तो ठीक है, अहंकार छोड़ने के लिए सुंदर साधन है दण्डवत, लेकिन ऐसा ब्रह्मज्ञान पाने का उद्देश्य बनाओ। महिलाएँ दण्डवत प्रणाम करेंगी तो उनको हानि होगी। महिलाएँ दण्डवत प्रणाम न करें, ऐसा शास्त्र का आदेश है। उनकी छाती धरती से लगने से उनकी हानि होती है(अर्थिंग आदि अनेक कारणों से)।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परदुःखकातरता और सच्चाई

गाँधी जी का बाल्यकाल बड़ा ही प्रेरणादायक रहा है। उनके जीवन में बचपन से लेकर अंतिम क्षणों तक अनेकों ऐसे संस्मरण हैं, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ सीख सकता है। गाँधी जी का बचपन का नाम मोहनदास था। मोहनदास अपने पिता की खूब सेवा करते थे। विद्यालय का समय पूरा होने पर वे सीधा घर आ जाते और पिता की सेवा में लग जाते।

एक बार उनके पिताजी श्री करमचंद गाँधी बीमार पड़ गये। मोहनदास उन्हें समय पर दवा देते, हर प्रकार की देखरेख करते और रात को सोते समय देर तक पाँव दबाते। पिताजी उनकी सेवा से खूब प्रसन्न थे और स्नेहभरे आशीर्वाद दिया करते थे।

एक बार मोहनदास घर में बैठकर पढ़ाई कर रहे थे। उनके भाई ने आकर उन्हें बताया कि उस पर 25 रूपये उधार हो गये हैं। इस कर्जे को चुकाने के लिए वह मोहनदास की मदद चाहता था। मोहनदास के पास पैसे तो थे नहीं, वे देते कैसे ? अंततः उन्होंने एक तरकीब

निकाली। रात्रि के समय मोहनदास ने अपने दूसरे भाई के बाजूबंद में से थोड़ा-सा सोना निकाल लिया और उसे सुनार के यहाँ बेचकर 25 रूपये भाई को दे दिये। इस प्रकार उनका भाई तो कर्जमुक्त हो गया परंतु चोरी करने के अपराध से मोहनदास का दिल दबा-दबा सा रहने लगा। भोजन, खेलकूद, पढ़ाई आदि सभी क्रियाओं से उनका मन उचाट हो गया। वे बेचैन हो उठे। उन्होंने अपने पिता जी को एक पत्र लिखा और धीरे से उन्हें पकड़ा दिया व पास ही पलंग पर स्वयं बैठ गये। पत्र में मोहनदास ने अपनी गलती स्वीकार की थी और पिताजी से कठोर-से-कठोर दंड देने का निवेदन किया था। पिताजी ने उनका पत्र पढ़ा। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। उन्हें अपने सुयोग्य पुत्र पर गर्व हो रहा था। ये आँसू मोहनदास की सच्चाई का प्रमाण दे रहे थे। पिता की अश्रुधारा ने मोहन के हृदय की मैल को धो बहाया। अपनी सच्चाई, ईमानदारी और परदुःखकातरता के कारण यही बालक आगे चलकर महात्मा गाँधी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्य के साधक को.....

गाँधी जी अपने नियम के बड़े पक्के थे। उनका प्रत्येक कार्य नियमित और निर्धारित समय-सीमा के अनुसार ही होता था। हरेक क्षण का पूर्ण सदुपयोग हो इस बात के लिए वे सदैव सचेत रहते थे। उनके आश्रम में सुबह-शाम प्रार्थना का कड़ा नियम था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। शाम की हाजिरी में हर व्यक्ति अपना नाम आने पर 'ॐ' बोलता, साथ ही दिन भर में काते गये सूत के तारों की संख्या भी बताता।

एक बार गाँधी जी सूत कात रहे थे। उसी समय उन्हें किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा। उन्होंने अपने स्टेनो टाइपिस्ट सुबैया से कहाः "सूत चरखे से उतार लेना, तार गिन लेना और शाम को प्रार्थना से पहले मुझे बता देना।" सुबैया ने उत्तर दियाः "जी, मैं बता दूँगा।"

संध्या हुई, प्रार्थना स्थल पर सभी कतारबद्ध खड़े हो गये। अब हाजिरी प्रारम्भ हुई, पहला नाम गाँधी जी का ही था। उन्होंने 'ॐ' बोला परंतु सूत के तारों की संख्या तो सुबैया ने उन्हें बतायी ही नहीं थी। गाँधी जी गम्भीर हो गये। एक बार सुबैया की ओर नजर उठायी परंतु चुप ही रहे। गाँधी जी के अंतर्मन में तीव्र वेदना हो रही थी। प्रार्थना समाप्त हुई। प्रतिदिन प्रार्थना के बाद गाँधी जी प्रसन्नचित्त से आश्रमवासियों के साथ बातचीत करते थे, परंतु आज उनके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव नहीं दिख रहे थे। जैसे उनका कुछ खो गया हो, इस तरह की गम्भीर चिंतन-मुद्रा में बैठे थे। अंदर की व्यथा को बाहर लाते हुए वे बोलेः "मैंने आज भाई सुबैया से कहा था कि 'मेरा सूत चरखे से उतार लेना और मुझे तारों की संख्या बता देना।' मैं मोह में फँस गया। मैंने सोचा था, 'सुबैया मेरा काम कर देंगे' लेकिन यह मेरी भूल थी। मुझे अपना काम स्वयं करना चाहिए था। मैं सूत कात चुका था, तभी एक जरूरी काम सामने आ गया और मैं सुबैया से सूत उतारने को कहकर बाहर चला गया। जो काम मुझे पहले करना चाहिए था वह नहीं किया। भाई सुबैया का इसमें कोई दोष नहीं, दोष मेरा ही है। मैंने क्यों अपना काम उनके भरोसे छोड़ा ! मुझसे यह प्रमाद क्यों हुआ ! सत्य के

साधक को ऐसा प्रमाद नहीं करना चाहिए। उसे अपना काम किसी दूसरे के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। आज की इस भूल से मैंने बहुत बड़ा पाठ सीखा है। अब मैं फिर कभी ऐसी भूल नहीं करूँगा।"

गाँधी जी तो एक बार की गलती से सावधान हो गये और दुबारा कभी प्रमाद न करने का व्रत ले लिया परंतु हम क्या करते हैं..... कई बार धोखा खाने के बाद भी अपना आलस्य-प्रमाद और पराश्रयीपना नहीं छोड़ते, फिर-फिर से वही भूल दोहराते रहते हैं। इससे जीवन का अमूल्य समय यों ही बीत जाता है और इन छोटी-छोटी गलतियों से जीवन तुच्छ, साधारण व्यक्तियों जैसा बन जाता है।

शास्त्रों में कहा गया हैः **प्रमादो ही मृत्युः।** 'प्रमाद ही मृत्यु है।' प्रमाद शीघ्रता से अधःपतन और विनाश की ओर ले जाता है। मात्र एक पल का प्रमाद सफलता को विफलता में बदल सकता है। बीता हुआ क्षण कभी लौटकर नहीं आता। अतः हमें प्रमाद नहीं करना चाहिए। कभी प्रमाद हो जाय तो उसका प्रायश्चित करना चाहिए। की हुई गलती के प्रति मन में ग्लानि उत्पन्न होना और उसे फिर कभी न करने का संकल्प करना ही उसका सच्चा प्रायश्चित है।

बहुत से लोग आज का काम कल पर टाल देते हैं। इस तरह 'कल-कल' करते वह काम कभी पूरा नहीं होता। इसीलिए कहा गया हैः 'जो सत्कार्य करना हो उसे तत्काल कर डालो, कल कभी नहीं आता।'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ऋतस्य पथ्याऽअनु।

हे मानव ! तू सत्य के मार्गों का अनुसरण कर। यजुर्वेदः 6.12

ऋतस्य धीतिर्बृजिनानि हन्ति।

सत्य का आचरण पापों को नष्ट कर देता है। ऋग्वेदः 4.23.8

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत सान्निध्य से जीवन-परिवर्तन

परब्रह्म परमात्मा के साथ एकत्व के अनुभव को उपलब्ध स्वामी रामतीर्थ देश-विदेश में घूम-घूमकर ब्रह्मविद्या का उपदेश देते थे। बात फरवरी सन् 1902 की है। 'साधारण धर्मसभा, फैजाबाद' के दूसरे वार्षिकोत्सव से स्वामी रामतीर्थ भी पधारे। स्वामी जी तो वेदान्ती थे। 'सबमें ब्रह्म है, सब ब्रह्म में है, सब ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूँ, आप भी ब्रह्म हैं, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है।'-इसी सनातन सत्य ज्ञान की पहले दिन उन्होंने व्याख्या की। श्रोताओं में एक सज्जन श्री नौरंगमल भी मौजूद थे। उनके पास एक मौलवी मोहम्मद मुर्तजा अली खां बैठे थे। नौरंगमलजी ने मौलवी साहब से कहाः "सुनते हो मौलाना ! यह युवक क्या कह रहा है ? कहता है कि मैं खुदा हूँ।" यह सुनकर मौलवी साहब आपे से बाहर हो गये और कहने लगेः

"अगर इस वक्त मुसलमानी राज्य होता तो मैं फौरन इस काफिर की गर्दन उड़ा देता, किंतु अफसोस ! मैं यहाँ मजबूर हूँ।"

दूसरे दिन मौलवी साहब फिर धर्मसभा में आये, वहाँ सुबह का सत्संग चल रहा था। मंडप श्रद्धालुओं से भरा हुआ था। स्वामी रामतीर्थ फारसी में एक भजन गा रहे थे, जिसका मतलब थाः 'हे नमाजी ! तेरी यह नमाज है कि केवल उठक-बैठक ? अरे ! नमाज तो तब है जब तू ईश्वर के विरह में ऐसा बेचैन और अधीर हो जाय कि तुझे न बैठते चैन मिले और न खड़े होते। असली नमाज तो तभी कहलायेगी, नहीं तो यह केवल कवायद(नियम) मात्र है।"

स्वामी रामतीर्थ यह भजन बिल्कुल तल्लीन होकर गा रहे थे और उनकी आँखों से आँसू झर रहे थे। उस समय उनके चेहरे से अलौकिक तेज बरस रहा था। मौलवी साहब स्वामी रामतीर्थ की उस तल्लीनता, भगवत्प्रेम और भगवत्समर्पण से बहुत प्रभावित हुए। भजन समाप्त होते ही मौलवी अपनी जगह से उठे और स्वामी रामतीर्थ के पास पहुँचकर अपने वस्त्रों में छुपाया हुआ एक खंजर (कटार) निकालकर उनके कदमों में रख दिया और बोलेः "हे राम ! आप सचमुच राम हैं। मैं आज इस वक्त बहुत बुरी नीयत से आपके पास आया था। मैं आपका गुनहगार हूँ। मुझे माफ कर दीजिये। मैं बहुत शर्मिंदा हूँ।"

स्वामी रामतीर्थ मुस्कराये और बोलेः "क्यों गंदा बंदा बनता है ! जो तू है वही तो मैं हूँ। मैं तुझसे अलग कब हूँ ? जा, आईंदा किसी से भी नफरत मत करना क्योंकि सबके भीतर वही सर्वव्यापी खुदा मौजूद है। हालाँकि तू उससे बेखबर है पर वह तेरी हर बात को जानता है। अपने खयालात पवित्र रख। खुदी को भूल जा और खुदा को याद रख, जो तेरे नजदीक से भी नजदीक है, यानी जो तू खुद है।" - ऐसा कहकर स्वामी जी ने बहुत प्यार से मौलवी के सिर पर हाथ फेरा और मौलवी अपना सिर स्वामी जी के चरणों पर रख बच्चों की तरह रोने लगे। रोते-रोते मौलवी की आँखें लाल हो गयीं। वे किसी भी प्रकार से स्वामी जी के चरण नहीं छोड़ रहे थे। बस, एक ही रट लगा रखी थीः "मुझे माफ कर दीजिये, मुझे माफ कर दीजिये....!" बड़ी मुश्किल से उन्हें शांत किया गया। तब से वह मौलवी मुहम्मद मुर्तजा अली खाँ उनका अनन्य भक्त हो गया। उसने अपने आपको स्वामी जी के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया और उसका जीवन भक्तिमय हो गया।

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सभी के आत्मीय स्वजन हैं। वे किसी को भी अपने से अलग नहीं देखते और प्राणिमात्र पर अपनी करूणा-कृपा रखते हैं। वे सभी का आत्मोत्थान चाहते हैं। वे हमारे अंतःकरण में भरे कूड़े-कचरे को अपने उपदेशों द्वारा बाहर निकाल फेंकते हैं और हमारे हृदय को निर्मल व पवित्र बना देते हैं। वे हमें जीवन जीने की सही राह दिखाते हैं और जीवन को जीवनदाता भगवान की ओर ले जाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ का रसमय जीवन आज भी दिख रहा है-कहीं कोई बापू जी कहता है, कोई साँईं कहता है परंतु अठखेलियाँ वही सच्चिदानन्द की..... सभी को हरिनाम के द्वारा अपने ब्रह्मसुख का रस प्रदान करने वाले ऐसे कौन हैं इस समय ?

बा....पू....जी....!

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्राणिमात्र की आशाओं के राम

श्रीरामचरित मानस में आता हैः

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।।

'संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है। परंतु उन्होंने असली बात कहना नहीं जाना क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है जबकि परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं।" (उत्तर कां. 124.4)

संतों का हृदय बड़ा दयालु होता है। जाने अनजाने कोई भी जीव उनके सम्पर्क में आ जाता है तो उसका कल्याण हुए बिना नहीं रहता। एक उपनिषद में उल्लेख आता हैः

यद् यद् स्पृश्यति पाणिभ्यां यद् यद् पश्यति चक्षुषा।

स्थावरणापि मुच्यन्ते किं पुनः प्राकृताः जनाः।।

'ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ब्रह्मभाव से स्वयं के हाथों द्वारा जिनको स्पर्श करते हैं, आँखों द्वारा जिनको देखते हैं वे जड़ पदार्थ भी कालांतर में जीवत्व पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तो फिर उनकी दृष्टि में आये हुए व्यक्तियों के देर-सवेर होने वाले मोक्ष के बारे में शंका ही कैसी !'

ब्रह्मनिष्ठ संत श्री आसारामजी बापू का पावन जीवन तो ऐसी अनेक घटनाओं से परिपूर्ण है, जिनमें उनकी करूणा-उदारता एवं परदुःखकातरता सहज में ही परिलक्षित होती है। आज से 30 वर्ष पहले की बात हैः

एक बार पूज्य श्री डीसा में बनास नदी के किनारे संध्या के समय ध्यान-भजन के लिए बैठे हुए थे। नदी में घुटने तक पानी बह रहा था। उसी समय जख्मी पैरवाला एक व्यक्ति नदी किनारे चिंतित-सा दिखायी दिया। वह नदी पार अपने गाँव जाना चाहता था। घुटने भर पानी वाली नदी, पैर में भारी जख्म, नदी पार कैसे करे ! इसी चिंता में डूबा सा दिखा। पूज्य श्री उसकी चिंता का कारण समझ गये और उसे अपने कंधे पर बैठाकर नदी पार करा दी। घाव से पीड़ित पैरवाला वह गरीब मजदूर दंग रह गया। साँईं की सहज करूणा-कृपा व दयाभरे व्यवहार से प्रभावित होकर डामर रोड बनाने वाले उस मजदूर ने अपना दुखड़ा सुनाते हुए पूज्य बापू जी से कहाः

"पैर पर जख्म होने से ठेकेदार ने काम पर आने से मना कर दिया है। कल से मजदूरी नहीं मिलेगी।"

पूज्य बापू जी ने कहाः "मजदूरी न करना, मुकादमी करना। जा मुकादमी हो जा।"

दूसरे दिन ठेकेदार के पास जाते ही उस मजदूर को उसने ज्यादा तनख्वाहवाली, हाजिरी भरने की आरामदायक मुकादमी की नौकरी दी। किसकी प्रेरणा से दी, किसके संकल्प से दी यह मजदूर से छिपा न रह सका। कंधे पर बैठाकर नदी पार कराने वाले ने रोजी-रोटी की चिंता से भी पार कर दिया तो मालगढ़ का वह मजदूर प्रभु का भक्त बन गया और गदगद कंठ से डीसावासियों को अपना अनुभव सुनाने लगा।

ऐसे अनगणित प्रसंग हैं जब बापू जी ने निरोह, निःसहाय, जीवों को अथवा सभी ओर से हारे हुए, दुःखी, पीड़ित व्यक्तियों को कष्टों से उबारकर उनमें आनन्द, उत्साह भरा हो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तुम्हारे रुपये पैसे, फूल-फल की मुझे आवश्यकता नहीं, लेकिन तुम्हारा और तुम्हारे द्वारा किसी का कल्याण होता है तो बस, मुझे दक्षिणा मिल जाती है, मेरा स्वागत हो जाता है। मैं रोने वालों का रूदन भक्ति में बदलने के लिए, निराशों के जीवन में आशा के दीप जगाने के लिए, लीलाशाहजी की लीला का प्रसाद बाँटने के लिए आया हूँ और बाँटते-बाँटते कइयों को भगवदरस में छका हुआ देखने को आया हूँ। प्रभु प्रेम के गीत गुँजाकर आप भी तृप्त रहेंगे, औरों को भी तृप्ति के आचमन दिया करेंगे, ऐसा आज से आप व्रत ले लें, यही आसाराम की आशा है। ॐ गुरु...... ॐ गुरु..... ॐ गुरु.....ॐ....

चिंतन करो कि 'ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं अपने राम-स्वभाव में जगूँगा, सुख-दुःख में सम रहूँगा...? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मुझे संसार स्वप्न जैसा लगेगा...? ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं अपनी देह में रहते हुए भी विदेही आत्मा में जगूँगा....?' ऐसा चिंतन करने से निम्न इच्छाएँ शांत होती जायेंगी और बाद में उन्नत इच्छाएँ भी शांत हो जायेंगी। फिर तुम इच्छाओं के दास नहीं, आशाओं के दास नहीं, आशाओं के राम हो जाओगे।

पूज्य बापू जी।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मारकर भी खिलाता है !

पूज्य बापूजी के सत्संग प्रवचन से

मलूकचंद नाम के एक सेठ थे। उनका जन्म इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक ग्राम में वैशाख मास की कृष्ण पक्ष की पंचमी को संवत् 1631 में हुआ था। पूर्व के पुण्य से वे बाल्यावस्था में तो अच्छे रास्ते चले और भक्तिभाव का आश्रय लिया लेकिन जवानी में जरा भटक गये।

उनके घर के नजदीक ही एक मंदिर था। एक रात्रि को पुजारी के कीर्तन की ध्वनि के कारण उन्हें ठीक से नींद नहीं आयी। सुबह उन्होंने पुजारी जी को खूब डाँटा कि "यह सब क्या है ?"

पुजारी जी बोलेः "एकादशी का जागरण कीर्तन चल रहा था।"

"अरे ! क्या जागरण कीर्तन करते हो ? हमारी नींद हराम कर दी। अच्छी नींद के बाद व्यक्ति काम करने के लिए तैयार हो पाता है, फिर कमाता है तब खाता है।"

पुजारी जी ने कहाः "मलूकजी ! खिलाता तो वह खिलाने वाला ही है।"

"कौन खिलाता है ? क्या तुम्हारा भगवान खिलाने आयेगा ?"

"वही तो खिलाता है।"

"क्या भगवान खिलाता है ! हम कमाते हैं तब खाते हैं।"

"निमित्त होता है तुम्हारा कमाना और पत्नी का रोटी बनाना, बाकी सबको खिलाने वाला, सबका पालनहार तो वह जगन्नियन्ता ही है।"

"क्या पालनहार-पालनहार लगा रखा है ! बाबा आदम के जमाने की बातें करते हो। क्या तुम्हारा पालने वाला एक-एक को आकर खिलाता है ? हम कमाते हैं तभी तो खाते हैं !"

"सभी को वही खिलाता है।"

"हम नहीं खाते उसका दिया।"

"नहीं खाओ तो मारकर भी खिलाता है।"

"पुजारी जी ! अगर तुम्हारा भगवान मुझे चौबीस घंटों में नहीं खिला पाया तो फिर तुम्हें अपना यह भजन-कीर्तन सदा के लिए बंद करना होगा।"

"मैं जानता हूँ कि तुम्हारी बहुत पहुँच है लेकिन उसके हाथ बढ़े लम्बे हैं। जब तक वह नहीं चाहता, तब तक किसी का बाल भी बाँका नहीं हो सकता। आजमाकर देख लेना।"

पुजारीजी भगवान में प्रीति वाले कोई सात्त्विक भक्त रहें होंगे।

मलूकचंद किसी घोर जंगल में चले गये और एक विशालकाय वृक्ष की ऊँची डाल पर चढ़कर बैठ गये कि 'अब देखें इधर कौन खिलाने आता है। चौबीस घंटे बीत जायेंगे और पुजारी की हार हो जायेगी, सदा के लिए कीर्तन की झंझट मिट जायेगी।'

दो-तीन घंटे के बाद एक अजनबी आदमी वहाँ आया। उसने उसी वृक्ष के नीचे आराम किया, फिर अपना सामान उठाकर चल दिया लेकिन अपना एक थैला वहीं भूल गया। भूल गया कहो, छोड़ गया कहो। भगवान ने किसी मनुष्य को प्रेरणा की थी अथवा मनुष्यरूप में साक्षात् भगवत्सत्ता ही वहाँ आयी थी, यह तो भगवान ही जानें।

थोड़ी देर बाद पाँच डकैत वहाँ से पसार हुए। उनमें से एक ने अपने सरदार से कहाः "उस्ताद ! यहाँ कोई थैला पड़ा है।"

"क्या है ? जरा देखो।"

खोलकर देखा तो उसमें गरमागरम भोजन से भरा टिफिन !

"उस्ताद भूख लगी है। लगता है यह भोजन अल्लाह ताला ने हमारे लिए ही भेजा है।"

"अरे ! तेरा अल्लाह ताला यहाँ कैसे भोजन भेजेगा ? हमको पकड़ने या फँसाने के लिए किसी शत्रु ने ही जहर-वहर डालकर यह टिफिन यहाँ रखा होगा अथवा पुलिस का कोई षडयंत्र होगा। इधर-उधर देखो जरा कौन रखकर गया है।"

उन्होंने इधर-उधर देखा लेकिन कोई भी आदमी नहीं दिखा। तब डाकुओं के मुखिया ने जोर से आवाज लगायीः "कोई हो तो बताये कि यह थैला यहाँ कौन छोड़ गया है।"

मलूकचंद ऊपर बैठे-बैठे सोचने लगे कि 'अगर मैं कुछ बोलूँगा तो ये मेरे ही गले पड़ेंगे।'

वे तो चुप रहे लेकिन जो सबके हृदय की धड़कनें चलाता है, भक्तवत्सल है वह अपने भक्त का वचन पूरा किये बिना शांत नहीं रहता ! उसने उन डकैतों को प्रेरित किया कि 'ऊपर भी देखो।' उन्होंने ऊपर देखा तो वृक्ष की डाल पर एक आदमी बैठा हुआ दिखा।

डकैत चिल्लायेः "अरे ! नीचे उतर !"

"मैं नहीं उतरता।"

"क्यों नहीं उतरता, यह भोजन तूने ही रखा होगा।"

"मैंने नहीं रखा। कोई यात्री अभी यहाँ आया था, वही इसे यहाँ भूलकर चला गया।"

"नीचे उतर ! तूने ही रखा होगा जहर-वहर मिलाकर और अब बचने के लिए बहाने बना रहा है। तुझे ही यह भोजन खाना पड़ेगा।"

अब कौन-सा काम वह सर्वेश्वर किसके द्वारा, किस निमित्त से करवाये अथवा उसके लिए क्या रूप ले यह उसकी मर्जी की बात है। बड़ी गजब की व्यवस्था है उस परमेश्वर की !

मलूकचंद बोलेः "मैं नीचे नहीं उतरूँगा और खाना तो मैं कतई नहीं खाऊँगा।"

"पक्का तूने खाने में जहर मिलाया है। अरे ! नीचे उतर, अब तो तुझे खाना ही होगा !"

"मैं नहीं खाऊँगा, नीचे भी नहीं उतरूँगा।"

"अरे, कैसे नहीं उतरेगा !"

डकैतों के सरदार ने अपने एक आदमी को हुक्म दियाः "इसको जबरदस्ती नीचे उतारो।"

डकैत ने मलूकचंद को पकड़कर नीचे उतारा।

"ले, खाना खा।"

"मैं नहीं खाऊँगा।"

उस्ताद ने धड़ाक से उनके मुँह पर तमाचा जड़ दिया। मलूकचंद को पुजारीजी की बात याद आयी कि 'नहीं खाओगे तो मारकर भी खिलायेगा।'

मलूकचंद बोलेः "मैं नहीं खाऊँगा।"

"अरे, कैसे नहीं खायेगा ! इसकी नाक दबाओ और मुँह खोलो।"

वहाँ डंडी पड़ी थी। डकैतों ने उससे नाक दबायी, मुँह खुलवाया और जबरदस्ती खिलाने लगे। वे नहीं खा रहे थे तो डकैत उन्हें पीटने लगे।

अब मलूकचंद ने सोचा कि 'ये पाँच हैं और मैं अकेला हूँ। नहीं खाऊँगा तो ये मेरी हड्डी पसली एक कर देंगे।' इसलिए चुपचाप खाने लगे और मन-ही-मन कहाः 'मान गये मेरे बाप ! मारकर भी खिलाता है ! डकैतों के रूप में आकर खिला चाहे भक्तों के रूप में आकर खिला लेकिन खिलाने वाला तो तू ही है। अपने पुजारी की बात तूने सत्य साबित कर दिखायी।' मलूकचंद के बचपन की भक्ति की धारा फूट पड़ी।

उनको मारपीटकर डकैत वहाँ से चले गये तो मलूकचंद भागे और पुजारीजी के पास आकर बोलेः "पुजारी जी ! मान गये आपकी बात कि नहीं खायें तो वह मारकर भी खिलाता है।"

पुजारी जी बोलेः "वैसे तो कोई तीन दिन तक खाना न खाये तो वह जरूर किसी-न-किसी रूप में आकर खिलाता है लेकिन मैंने प्रार्थना की थी कि 'तीन दिन की नहीं एक दिन की शर्त रखी है, तू कृपा करना।' अगर कोई सच्ची श्रद्धा और विश्वास से हृदयपूर्वक प्रार्थना करता है तो वह अवश्य सुनता है। वह तो सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

कर्तुं शक्यं अकर्तुं शक्यं अन्यथा कर्तुं शक्यम्।

मलूकचंद ने पुजारी को धन्यवाद दिया। वे सोचने लगे, 'जिसने मुझे मारकर भी खिलाया, अब उस सर्वसमर्थ की मैं खोज करूँगा।'

वे उस खिलाने वाले की खोज में घने जंगल में चले गये। वहाँ वे भजन-कीर्तन में लग गये। लग गये तो ऐसे लगे कि मलूकचंद से संत मलूकदास प्रकट हो गये।

फिर तो उनके दर्शन से कइयों का जीवन बदला। उनके सत्संग से कइयों की वृत्तियाँ बदलीं, कई उजड़े दिल चमन हुए। उनका सान्निध्य पाकर कई गुमराह लोग अच्छी राह पर चल पड़े, हजारों लाखों लोग तर गये।

वे 108 वर्ष की उम्र तक जिये। संवत 1739 में जब वे संसार से जा रहे थे तो उन्होंने भक्तों से कहा कि "भगवान जगन्नाथ को स्नान कराने पर पनाली में से जहाँ जल नीचे गिरता है, वहाँ मेरी समाधि बनाना और जगन्नाथजी को भोग लगाने के लिए रोटी बनाने हेतु जो आटा गूँथा जाता है, उसमें से बचे हुए आटे का एक मोटा रोट बनाकर इस दास को भोग लगा देना।"

भक्तों की हिम्मत नहीं हुई कि जगन्नाथपुरी में ऐसी व्यवस्था करवा दें, इसलिए उन्होंने एक बक्से में महाराज का शरीर रखकर दरिया में जलदेवता को अर्पण कर दिया। परंतु वह बक्सा तैरता हुआ किनारे आ गया और किसी को प्रेरणा हुई व जैसा मलूकदास जी चाहते थे वैसी ही व्यवस्था हो गयी। आज मलूकदासजी की समाधि भगवान जगन्नाथ के मंदिर के दक्षिण द्वार पर स्थित है और भगवान जगन्नाथ को भोग लगाने के लिए जो आटा गूँथा जाता है उसमें से बचे हुए आटे का रोट बनता है और उसी का मलूकदास जी को भोग लगाया जाता है।

जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है। वह अगर उस परमात्मा का आश्रय लेकर कुछ ठान लेता है तो प्रकृति उसकी अवश्य मदद करती है। उसे पूरा किये बिना नहीं रहती, फिर चाहे निमित्त किसे भी बनाये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्यनिष्ठा का चमत्कार

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

छत्तीसगढ़ की एक घटना है। रायपुर के पासवाले स्थानों में पिंडारा जाति के डकैतों का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि वे गाँव-के-गाँव लूट लेते थे। उनका आतंकवादियों की नाईं बड़ा संगठन बन गया था। डाकू अभयसिंह के नेतृत्व में वे डाका डालते थे। उस समय का राजा इन डकैतों से लोहा लेने में अपने को असमर्थ मानने लगा था।

मंत्रियों ने राजा से कहाः "राजा साहब ! हो सकता है रायपुर के पास वाले नगर पर पिंडारा डाकू कभी भी कब्जा कर लें, क्योंकि उनकी संख्या और शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अपने सिपाही और अमलदार उनसे मात खाकर वापस आ रहे हैं।"

राजा ने मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श किया और आखिर यह तय हुआ कि वे डाकू किस समय व कहाँ इकट्ठे होते हैं तथा किस समय अचेत और लापरवाह होते हैं, इसका पता लगाया जाय तथा जब वे अचेत हों तब उन पर हमला बोल दिया जाय। यह पता लगाने के लिए राज-पुरस्कार भी घोषित किये गये लेकिन इस दुष्कर कार्य के लिए कोई तैयार न हुआ, सभी सिर झुकाकर बैठे रहे।

उस राज्य में ओंकार का जप करने वाले और गुरुमंत्र का आश्रय लेने वाले एक दुबले-पतले ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था रूद्रदेव। उन्होंने संकल्प किया कि 'मैं समाज का

शोषण करने वाले इस संगठन का पता लगाऊँगा।' वे चल पड़े और यात्रा करते करते उन डाकुओं के क्षेत्र में जा पहुँचे। वे थक गये थे, इसलिए एक पीपल के पेड़ के नीचे सो गये। कुछ समय नींद लेकर उठे और थोड़ी देर शांत भाव से बैठे। इतने में डाकू अभयसिंह वहाँ से गुजरा। रूद्रदेव को देखकर वह बोलाः "ऐ ! यहाँ क्यों पड़े हो और कहाँ से आये हो ?"

सामने वाले व्यक्ति का वेश देखकर रूद्रदेव समझ गये कि यह कोई डाकू है। उन्होंने शांतस्वरूप ईश्वर में गोता मारा और सोचने लगे, 'अब सत्य का ही सहारा लेंगे।' उन्हें सत्प्रेरणा मिली।

रुद्रदेव ने कहाः "भैया ! मैं पिंडारों के स्थान का रास्ता जानना चाहता हूँ।"

तब अभयसिंह चौकन्ना होते हुए बोलाः "ऐं....! पिंडारों का स्थान ?"

रूद्रदेवः "हाँ।"

अभयसिंहः "मुझे किसी जरूरी काम से जाना है, नहीं तो मैं तुम्हें उनकी बस्ती और साथ में उनका काम भी अभी-अभी दिखा देता। लेकिन तुम पिंडारों की बस्ती के बारे में क्यों जानना चाहते हो ?"

रूद्रदेव बोलेः "मेरे पास सात अशर्फियाँ हैं, आप चाहे तो इन्हें ले लो। चाहो तो ये कपड़े भी उतरवाकर रख लो और मुझे मारना चाहो तो मारो। सच्चाई यह है कि पिंडारों से जनता पीड़ित हो रही है, यह देखकर राजदरबार ने फैसला किया कि उनके स्थानादि के बारे में जानकारी इकट्ठी की जाय लेकिन इस कार्य को करने के लिए कोई भी आगे नहीं आया। जब मुझे राजदरबार में कोई मर्द नहीं दिखा, तब मैंने मर्दों-के-मर्द ईश्वर में गोता मारा। शुभ संकल्प फलित करने वाले उस भगवान ने मुझे प्रेरणा दी और मैंने यह बीड़ा उठाया।"

"ऐं.....!" अभयसिंह का डाकूपना उछला लेकिन रूद्रदेव ब्राह्मण शांत भाव से, 'ॐ आनंद.... सबमे तू...' इस भगवदभाव से अभयसिंह की ओर देखते रहे। नजर से नजर टकरायी। हिंसक आँखें अहिंसक अमृत में भीग गयीं।

अभयसिंह बोलाः "ब्राह्मण देवता ! मार डाला तुमने। मैं तुम्हारा बिनशर्ती शरणागत बन गया। गुरु ! चलो, मैं तुम्हारी थोड़ी सेवा कर लेता हूँ, तुम्हें पिंडारों की बस्ती दिखा देता हूँ और वे जहाँ इकट्ठे होते हैं वह जगह भी दिखा देता हूँ।"

अभयसिंह ने रूद्रदेव ब्राह्मण को अपना सारा क्षेत्र दिखाया तथा उन्हें पिंडारों के बारे में जो जानकारी चाहिए थी वह बता दी। फिर रूद्रदेव ने राजदरबार में जाकर सारे रहस्यों का उदघाटन किया, जिसे सुनकर सभी लोग दंग रह गये।

राजा बोलाः "अब पिंडारों पर चढ़ाई के बारे में सोचा जाये।"

इतने में एक हट्टा-कट्टा निर्भीक व्यक्ति आगे आकर बोलाः "मैं पिंडारों का मुखिया अभयसिंह हूँ। इन ब्राह्मण की सत्यनिष्ठा एवं परहित की दृष्टिवाली करूणामयी आँखों ने मुझे बिनशर्ती शरणागत बना लिया है। मैं शरणागत हूँ, मेरा जो कुछ भी है, अब गुरुदेव का है। अब फौज भेजने की क्या आवश्यकता है ?"

राजा ने रूद्रदेव ब्राह्मण के चरणों में सिर झुकाया और कहाः "महाराज ! आपकी सत्यनिष्ठा के आगे मैं नतमस्तक हूँ। आज से मैं आपका शिष्य हूँ और अभयसिंह मेरा सेनापति होगा।"

पतंजलि महाराज का वचन हैः

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। 'सत्य में दृढ़ स्थिति हो जाने पर वह क्रिया फल आश्रय बनती है।' (पातंजल योगदर्शनः 2.36)

रूद्रदेव ब्राह्मण की सत्यनिष्ठा ने डाकुओं से जनता की रक्षा तो की ही, साथ ही अभयसिंह जैसे डाकू एवं पिंडारा जाति का भी कल्याण कर दिया। आज भी पिंडारा जाति के लोगों को कोई कसम खानी पड़े तो वे कहते हैं- 'रूद्रदेव ब्राह्मण के चरणों की सौगंध अगर मैंने ऐसा किया हो तो.....' अगर कोई पिंडारा रूद्रदेव को साक्षी रखकर झूठी कसम खाता है तो उस पर कदुरती आपदाएँ आ पड़ती हैं।

रूद्रदेव ब्राह्मण का शरीर तो नहीं रहा लेकिन उनकी सत्यनिष्ठा तो अभी भी छत्तीसगढ़ के उन इलाकों में सुप्रसिद्ध है। इसलिए बुद्धिमानों को तथा जो स्वयं सुखी होना चाहते हैं व दूसरों का भला करना चाहते हैं उनको सत्य की शरण जाना चाहिए। असत्य बोलने वाला तो स्वयं ही विनाश की ओर जा रहा है, फिर वह दूसरों का क्या भला करेगा।

अभयसिंह डाकू के अंदर कौन था जिसने उसकी क्रूरता को शिष्यत्व में बदल दिया, अशुभ संकल्प को शुभ संकल्प में और हिंसक वृत्ति को अहिंसक वृत्ति में बदल दिया ?... सत्यस्वरूप परमात्मा। जो शुभ संकल्प के रास्ते चार कदम चलता है, परमात्मा और शुभ संकल्पवाले परमात्मा के प्यारे उसके साथ हो जाते हैं। आप सत्य की रक्षा करेंगे, सत्कर्म करेंगे, सज्जनों की रक्षा करेंगे तो ईश्वर की सत्ता आपकी रक्षा करेगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जैसी करनी वैसी भरनी

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

श्रीरामचरित.अयो.कां-218.2

कर्म की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है क्योंकि वह जड़ है। कर्म को यह पता नहीं है कि 'मैं कर्म हूँ', फिर भी यह देखा गया है कि कर्म की गति बड़ी गहन होती है। इसलिए मनुष्य अगर सावधान सत्त्वगुण नहीं बढ़ाता है, अपितु जो मन में आया सो खा लिया, जो मन में आया सो कर लिया-इस तरह विषय-विकारों में तथा पापों और बुराइयों में जिंदगी बिता देता है तो उसे भयंकर नरकों में जाकर कष्ट भोगने पड़ते हैं और खूब दुःखद, नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

अनेकचित्तविभ्रन्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।

'अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जाल से समावृत और विषयभोगों में अत्यंत आसक्त असुर लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।'

श्रीमदभगवदगीताः 16.16

कौशाम्बी राज्य के राजा विजयप्रताप और उनकी महारानी सुनंदा की पहले की सभी संतानें तो ठीक-ठाक थीं, लेकिन इस बार महारानी ने एक ऐसे बालक को जन्म दिया जो कि अंगविहीन मांसपिंड था।

रानी सुनंदा उसे देखकर घबरा गयी और उसने राजा को बुलवाकर बालक दिखाया।

राजा ने कहाः "सुनंदा ! तेरी कोख से यह मांसपिंड जैसा बालक पैदा हुआ है ! फिर भी कैसे भी करके हमें इसका पालन-पोषण तो करना ही होगा।"

बालक का नाम मकराक्ष रखा गया और उसे तलघर में छुपा दिया गया तथा दाई से कहा गयाः "खबरदार ! हम तीनों के सिवाय यह बात किसी को भी पता न चले कि हमारे यहाँ ऐसा बालक पैदा हुआ है।"

सुनंदा अपने भाग्य को कोसती हुई उस बालक का पालन पोषण करने लगी।

कुछ समय बीतने पर कौशाम्बी नगर के राजोद्यान में तीर्थंकर महावीर स्वामी का आगमन हुआ। सारे नगर में यह खबर फैल गयी। बड़ी संख्या में लोग उनका सत्संग सुनने के लिए राजोद्यान की ओर आने लगे।

खूब चहल-पहल महसूस कर एक वृद्ध सूरदास (अंध व्यक्ति) ने लोगों से पूछाः "क्या आज राजा का जन्मदिन है या फिर कोई त्यौहार या उत्सव है, जिसके कारण नगर में इतनी चहल-पहल हो रही है ?"

उनमें से किसी युवक ने कहाः "न तो राजा का जन्मदिन है और न ही कोई त्यौहार या उत्सव है, आज नगर में महावीर स्वामी आये हैं। लोग उनके दर्शन-सत्संग के लिए राजोद्यान की ओर जा रहे हैं।"

वृद्ध सूरदास ने कहाः "मुझे भी संत के द्वार ले चलो।"

युवक ने कहाः "आँखों से तो तुम्हें दिखायी नहीं देता और कानों से कम सुनायी पड़ता है, फिर वहाँ जाकर क्या करोगे ?"

"मैं संत को नहीं देख सकूँगा लेकिन उनकी दृष्टि तो मुझ पर पड़ेगी, जिससे मेरे पाप मिटेंगे। कानों से उनका सत्संग भी नहीं सुन सकूँगा लेकिन वहाँ के सात्त्विक वातावरण का लाभ तो मुझे मिलेगा।"

युवक के हृदय में सज्जनता का संचार हुआ और उसने उस अंधे वृद्ध को ले जाकर सत्संग-स्थल पर एक ऐसी जगह बिठा दिया, जहाँ महावीर स्वामी की दृष्टि पड़ सके।

जब महावीर स्वामी सत्संग कर रहे थे तब उनके पट्टशिष्य गौतम स्वामी, जो हमेशा महावीर स्वामी को एकटक देखते हुए ध्यानपूर्वक उनका सत्संग सुना करते थे, बार-बार उस अंधे वृद्ध को ही देख रहे थे।

महावीर स्वामी को आश्चर्य हुआ कि 'मेरी तरफ एकटक देखने वाला गौतम आज बार-बार मुड़कर क्या देख रहा है !"

जब सत्संग पूरा हुआ तब महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से पूछाः "आज सत्संग के समय तुमने ऐसा क्या देखा जो तुम सत्संग से विमुख हो गये ?"

"भंते ! सत्संग में आये एक वृद्ध की ऐसी विचित्र स्थिति थी कि आँखों से तो वह अंधा था, उसके शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और उससे भयंकर बदबू भी आ रही

थी। बदबू के कारण कोई भी व्यक्ति उसके नजदीक नहीं बैठता था। वह कितना अभागा व दुःखी प्राणी है ! भंते ! उससे भी ज्यादा दुःखी कोई हो सकता है ?"

"हाँ, उस अंधे वृद्ध का तो कुछ पुण्य है। आँखों के सिवाय उसके शरीर के बाकी अंग ठीक हैं और वह चल फिर भी सकता है, लेकिन राजा विजयप्रताप का बालक मकराक्ष तो बिना हाथ-पैर के मांस के पिंड जैसा है और उसका पालन-पोषण तलघर में हो रहा है। इस बात को केवल राजा-रानी व एक दाई ही जानती है।"

"भंते ! अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं राजमहल में जाकर उसे देख आऊँ।"

महावीर स्वामी ने अनुमति दे दी।

जब गौतम स्वामी राजमहल में पहुँचे तो उन्हें देख के राजा विजयप्रताप व रानी सुनंदा चकित रह गये और सोचने लगे, 'यह भिक्षा का समय नहीं है और भिक्षापात्र भी इनके हाथ में नहीं है, फिर भी महावीर स्वामी के ये पट्टशिष्य हमारे राजमहल में आये हैं !'

राजा ने गौतम स्वामी का आदर-सत्कार किया और बोलेः "आपके यहाँ पधारने से यह राजमहल पवित्र हो गया है। हम आपकी क्या सेवा करें ? हमें आज्ञा दीजिए।"

गौतम स्वामी ने पूछाः "राजन् ! क्या आपके राजमहल में ऐसा भी कोई जीव है, जिसका पालन-पोषण तलघर में हो रहा है और वह अंगविहीन मांसपिंड जैसा है ?"

गौतम स्वामी का प्रश्न सुनकर राजा-रानी चकित हो गये। राजा ने उनसे पूछाः "इस बात को हम दोनों व एक दाई के सिवाय कोई नहीं जानता, फिर आपको यह सब कैसे पता चला ?"

"राजन ! मुझे यह सब महावीर स्वामी ने बताया है और मैं यहाँ मकराक्ष को देखने के लिए ही आया हूँ।!"

रानी ने कहाः "भोजन का समय हुआ है, मकराक्ष को भूख लगी होगी। मैं उसे भोजन कराने जाने ही वाली थी कि आपके आने की सूचना पाकर रूक गयी। चलिये, मैं आपको उसके पास ले चलती हूँ।"

वहाँ जाने से पहले रानी ने मुँह को वस्त्र से ढका और गौतम स्वामी को भी वैसा करने के लिए कहा, क्योंकिक जिस तलघर में मकराक्ष को रखा हुआ था वहाँ से ऐसी भयंकर बदबू आती थी कि खड़े रहना भी मुश्किल हो जाता था।

वहाँ पहुँचकर गौतम स्वामी ने देखा कि भूख के कारण लार टपकाता हुआ कोई मांसपिंड हिल रहा है।

जैसे ही रानी ने उसके मुँह से भोजन के कौर डालने शुरु किये, वह लपक-लपक कर खाने लगा। भोजन पूरा होते ही उस मांसपिंड में से रक्त, मवाद और विष्ठा निकलने लगी। गौतम स्वामी यह सब देखकर विस्मित हो गये।

राजमहल में वापस आने के बाद वे नहा-धोकर महावीर स्वामी के पास गये और पूछाः "भंते ! उस अभागे जीव ने ऐसा कौन सा कर्म किया होगा जो कौशाम्बी के राजमहल में जन्म लेकर भी ऐसी हालत में जी रहा है ?"

"गौतम ! वह पूर्वजन्म में इसी भरतक्षेत्र के सुकर्णपुर नगर का स्वामी था और अन्य पाँच सौ ग्राम भी उसके अधीन थे। तब उसका नाम इक्काई था।

वह अविद्यमान संसार को सत्य मानकर धन के लोभ में इतना नीचे गिर गया था कि लूटमार व अपहरण करके प्रजा का शोषण करता था। अपनी स्त्री होते हुए भी परायी स्त्रियें पर नजर रखता था। साधु-संतों का अपमान व सत्संग का अनादर करता था।

पूर्वजन्म के अपने इन नीच कर्मों के फलस्वरूप ही वह अंगविहीन मांसपिंड के रूप में जन्मा है और राजघराने में जन्म लेने के बावजूद राजसी सुखों से वंचित हो भयंकर कष्टों का संताप सहन कर रहा है।"

इसलिए कर्म करने में सावधान रहना चाहिए। मनुष्य-जन्म एक चौराहे के समान है। यहीं से सारे रास्ते निकलते हैं। चाहे आप अपने जीवन में ऐसे घृणित कर्म करो कि ब्रह्मराक्षस बन जाओ, आपके हाथ की बात है या फिर जप, ध्यान, भजन, सत्कर्म, संतों का संग आदि करके ब्रह्मज्ञान पाकर मुक्त हो जाओ, यह भी आप ही के हाथ की बात है। ब्रह्मज्ञान पाने के बाद कोई कर्म आपको बाँध नहीं सकेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कर्म तो जरूर करने चाहिए किंतु प्रयत्नपूर्वक अच्छे कर्म ही करने चाहिए और अच्छे कर्म में भी भावों की शुद्धता जरूरी है। अच्छे कर्म भी अगर द्वेषपूर्ण बुद्धि से होते हैं तो उनका परिणाम अच्छा नहीं आता है। किसी को नीचा दिखाने के लिए अच्छा काम करते हो तो परिणाम बढ़िया नहीं आता है। जैसे, दक्ष ने शिवजी को नीचा दिखाने के लिए यज्ञरूपी अच्छा कर्म कभी द्वेषबुद्धि से किया तो उसका परिणाम दुःखद ही आया। अतः सत्कर्म भी सावधान रहकर करने चाहिए।

पूज्य बापू जी

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

त्याग और साहस

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु कलकत्ता में विज्ञान का गहन अध्ययन तथा शोधकार्य कर रहे थे, साथ ही एक महाविद्यालय में पढ़ाते भी थे। उसी महाविद्यालय में कुछ अंग्रेज प्राध्यापक भी विज्ञान पढ़ाते थे। उनका पद तथा शैक्षणिक योग्यता श्री वसु के समान होते हुए भी उन्हें श्री वसु से अधिक वेतन दिया जाता था, क्योंकि वे अंग्रेज थे।

अन्याय करना पाप है किंतु अन्याय सहना दुगना पाप है - महापुरुषों के इस सिद्धान्त को जानने वाले श्री वसु के लिए यह अन्याय असहनीय था। उन्होंने सरकार को इस विषय में पत्र लिखा परंतु सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। श्री बसु ने इस अन्याय के विरोध में प्रति मास के वेतन का धनादेश(चेक) यह कहकर लौटाना आरम्भ किया कि जब तक उन्हें अंग्रेज प्राध्यापकों के समान वेतन नहीं दिया जायेगा, वे वेतन स्वीकार नहीं करेंगे।

इससे घर में पैसे की तंगी होने लगी। अध्ययन और शोधकार्य बिना धन के हो नहीं सकते थे। श्री बसु चिंतित हुए और इस विषय में उन्होंने अपनी पत्नी से चर्चा की। इस पर उनकी पत्नी श्रीमती अबला बसु ने उन्हें अपने सब आभूषण दे दिये और कहाः "इनसे कुछ काम चल जायेगा। इसके अलावा अगर हम लोग कलकत्ता के महँगे मकान को छोड़कर हुगली नदी के पार चंदन नगर में सस्ते मकान में रहें तो खर्च में काफी कमी आ जायेगी।"

श्री बसु बोलेः "ठीक है लेकिन हुगली को पार करके प्रतिदिन कलकत्ता कैसे पहुँचुगा ? श्रीमती बसु ने सुझाव दियाः "हम लोग अपनी पुरानी नाव की मरम्मत करा लेते हैं। उसमें आप प्रतिदिन आया जाया करें।" इस पर श्री बसु ने कहाः "मैं यदि प्रतिदिन नाव खेकर आऊँगा-जाऊँगा तो इतना थक जाऊँगा कि फिर न छात्रों को पढ़ा सकूँगा, न शोधकार्य कर सकूँगा।" परन्तु श्रीमती बसु हार मानने वाली नहीं थीं। वे बोलीं- "ठीक है, आप नाव मत खेना। मैं प्रतिदिन नाव खेकर आपको ले जाया और लाया करूँगी।"

उस साहसी, दृढ़निश्चयी महिला ने ऐसा ही किया। इसी कारण श्री जगदीशचन्द्र बसु अपना अध्ययन और शोधकार्य जारी रख सके और विश्वविख्यात वैज्ञानिक बन सके। अंततः अंग्रेज सरकार झुकी और श्री बसु को अंग्रेज प्राध्यकों के समान वेतन मिलने लगा।

संत श्री भोले बाबा ने कार्य-साफल्य की कुंजी बताते हुए कहा ही हैः

जो जो करे तू कार्य कर, सब शांत होकर धैर्य से।
उत्साह से अनुराग से, मन शुद्ध से बलवीर्य से।।

पति-पत्नी में आपस में कितना सामंजस्य, एक दूसरे के लिए कितना त्याग, सहयोग होना चाहिए तथा जीवन की हर समस्या से साथ मिलकर जूझने की कैसी भावना होनी चाहिए, इसका एक उत्तम उदाहरण पेश किया श्रीमती बसु ने। उनका नाम भले अबला था किंतु उन्होंने अपने आचरण से यह सिद्ध कर दिखाया कि किसी भी स्त्री को अपने-आपको अबला नहीं मानना चाहिए, अपितु धैर्य से हर कठिनाई का सामना करके यह सिद्ध कर दिखाना चाहिए कि वह सबला है, समर्थ है।

विश्वनियंता आत्मा-परमात्मा सबका रक्षक-पोषक है, सर्वसमर्थ है। ॐ....ॐ... दुर्बलता और जुल्म सहने का तथा दुर्बल विचारों और व्यर्थ की सहिष्णुता का त्याग करें। सबल, सुयोग्य बनें और अपने सहज-सुलभ आत्मा-परमात्मा के बल को पायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

यदि गृहस्थाश्रम को निभाने की कला आ जाय तो गृहस्थ जीवन धन्य हो जाता है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं - धन्यो गृहस्थाश्रम ! गृहस्थ जीवन का मुख्य उद्देश्य है अपनी वासनाओं पर संयम रखना, एक दूसरे की वासना को नियंत्रित कर त्याग और प्रेम उभारना तथा परस्पर जीवनसाथी बनकर एक दूसरे के जीवन को उन्नत करना।

पूज्य बापू जी

अंत समय कुछ हाथ न आये....

संसार की कोई भी चीज केवल देखने भर को तथा कहने भर को ही हमारी है, आखिर में तो छूट ही जायेगी। जब चीज छूट जाय तब रोना पड़े, उसके वियोग का दुःख सहना पड़े उससे पहले ही उसकी असारता को समझकर उससे ममता हटा लें। जो छूटने वाली चीज है उसे छूटने वाली समझ लें और जो नहीं छूटने वाला है, सदा साथ देने वाला है उस आत्मा में प्रीति कर लें। व्यक्ति का ऐसा विवेक जग जाय तो बेड़ा पार हो जाय।

जिसके जीवन में विवेक नहीं है उसका जीवन नश्वर भोगों और ऐहिक आपाधापी में खत्म हो जाता है, बर्बाद हो जाता है। अंत में कुछ भी हाथ नहीं लगता तब वह पछताता है।

मनुष्य को चाहिए कि अपनी विवेकदृष्टि सदा जागृत रखकर सफल जीवन जीने का यत्न करे। विवेकी मनुष्य किसी भी ऐहिक चीज-वस्तु या परिस्थिति में उलझेगा नहीं। धन हो, सत्ता हो, सामर्थ्य हो, मित्र-परिवार हो - सर्व प्रकार के ऐहिक सुख हों पर विवेकी उनसे चिपकेगा नहीं, उनका उपयोग करेगा। मूर्ख आदमी उनमें आसक्त हो जायेगा, 'मोर-तोर' की जेवरी ('मेरे-तेरे की रस्सी) में बँध जायेगा फिर अंतकाल में पछतायेगा।

एक रात राजा भोज अपने सर्वाधिक आरामदायक एवं मणियों से जड़े बहुमूल्य पलंग पर विश्राम कर रहे थे। अपने जीवनकाल में किये सर्वोत्कृष्ट कार्यों एवं महान उपलब्धियों पर उन्हें बहुत अभिमान हो रहा था। मानवहित के लिए उन्होंने अनेक उपयोगी कार्य किये थे, विविध लोकोपयोगी योजनाओं को कार्यान्वित किया था और प्रजा भी उन्हें भूदेव अर्थात् धरती का देव मानती थी।

वे विद्वानों का बहुत आदर करते थे एवं उनके विचारों, विशेषतः उनकी काव्य-रचनाओं को सुनकर उन्हें खूब पुरस्कार देते थे। काव्य-प्रेम और मानवता की सेवा उनके चरित्र के गौरव में सदैव वृद्धि करते रहते थे।

उनका कवि-हृदय कल्पनालोक में हिलोरें ले रहा था। मन में भाव आया कि 'मनुष्य जीवन लोकहित के लिए ही प्राप्त हुआ है और मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि अपनी प्रजा की भलाई में लगा रहता हूँ तथा मेरी प्रजा भी मेरे कार्यों से प्रसन्न है।"

संयोग से पलंग पर लेटे-लेटे काव्य की कुछ पंक्तियाँ भाव-जगत में खोये उन कवि के हृदय में गंगाजी की तरंगों की भाँति लहराने लगीं और वे भाव-विभोर होकर गुनगुनाने लगेः

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः।

'अहा ! मुझे चित्त को मयूर की भाँति नृत्य से लुभाने वाली सुंदर कमनीय युवतियों का अक्षय प्यार और स्वभावानुकूल स्नेही मित्र के संग का सुख मिला है, मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ !"

इस पंक्ति को दोहरा-दोहराकर वे आत्मगौरव का अनुभव कर रहे थे। इन्द्रियसुख पाकर मनुष्य को अभिमान हो जाता है। फिर वह अहं-तृप्ति में ही सुख का अनुभव करता है।

राजा भोज सोच रहे थे कि 'किसी राजा को वह ऐश्वर्य नहीं मिला जो मुझे प्राप्त है। मेरे भाग्य में कितना अक्षय आनंद भरा हुआ है !' और इसी मिथ्या अतिशयानंद से उनके मन में कविता की एक और पंक्ति लहराने लगी। वे बोल उठेः

सद् बान्धवाः प्रणतिमगर्भगिरश्च भृत्याः।

'अपने निजी स्नेही बंधुओं का साहचर्य और अनुरागी सेवकों की अटूट सेवावृत्ति मुझे मिली है, वाह ! मेरा कितना अहोभाग्य है !'

वे उपरोक्त दोनों पंक्तियों का पुनः-पुनः गर्व से उच्चारण करते रहे और अधिकाधिक हर्ष-विभोर होते गये। कवि का हृदय कल्पनाओं का भंडार होता है और इसी कल्पना के संसार में उनका काव्य-निर्माण आगे बढ़ा।

कुछ देर और विचारमग्न हो वे तीसरी पंक्ति यों कहने लगेः

गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः।

"मेरे द्वार पर गर्व और शक्ति से सम्पन्न चंचल घोड़े हिनहिनाते हैं तथा बड़े-बड़े दाँतों वाले मदमत्त हाथी चिंघाड़ते हैं। अहो ! मैं सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न हूँ। मेरे ऊपर भगवान की असीम कृपा है। मुझे अपने अद्वितीय भाग्य पर गर्व है ! मैं कितना भाग्यशाली हूँ !"

फिर तीनों पंक्तियों को एक साथ जोड़कर वे बार-बार हर्षित मन से उच्च स्वर में गाने लगे। बहुत देर तक वे काव्य की चतुर्थ पंक्ति जोड़ने का प्रयत्न करते रहे पर सफल न हो पाये।

अहंकार का विकार मनुष्य की नैतिक शक्ति का क्षय कर देता है, उसे हिंसा और विनाश के पथ पर ले जाता है। उसके अंदर का स्वार्थ उसे प्रत्येक कार्य, बातचीत, आचार-व्यवहार से दूसरों पर अत्याचार करने के लिए उत्साहित करता है। वह काल्पनिक जगत में रहने लगता है।

राजा भोज मन ही मन अपने काव्य-जगत में विचरण कर रहे थे। अपने को हर प्रकार से धन्य समझ मिथ्या गर्व में चूर थे परंतु काव्य गी चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी। तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

उनके पलंग के नीचे छिपे एक निर्धन, संस्कृत के कवि उदभट्ट से और अधिक छिपा तथा चुप न रहा गया। लक्ष्मी जी सदा उनसे रुष्ट ही रहती थीं। वे राजा भोज से कुछ दान-दक्षिणा की याचना करने आये थे किंतु दण्ड के भय से पलंग के नीचे छिपकर ही रात काट रहे थे। वे भी संस्कृत के सिरमौर काव्यधर्मी थे। वे राजा के मिथ्या दर्प को सहन न कर सके और उन्होंने छिपे-छिपे नीचे से चौथी पंक्ति बोलीः

"सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति।

'हे राजन् ! यह ठीक है कि आपको अपने सत्कार्यों तथा पुण्यों से ये सब लौकिक सम्पदायें और सुख वैभव प्राप्त हो गये हैं। आज आपको सांसारिक आनंद-उपभोग के समस्त भौतिक साधन भी उपलब्ध हैं, किंतु जीवन के अंतिम समय में जब मृत्यु की छाया में मनुष्य के नेत्र बंद होने लगते हैं, तब उसके पास कुछ भी नहीं रहता।

हे उदार-शिरोमणि ! यह सांसारिक सुख-वैभव तो क्षणिक एवं अस्थिर है। इन सब सम्पदाओं में स्थायी रूप से आपके साथ रहने वाला कुछ भी नहीं है। सदा आपके साथ रहने वाला, शास्वत, अनादि अनंत तो आपका अपना आत्मा ही है और उसका ज्ञान ही सदा टिकने वाली सम्पदा है।

क्षमा करें राजन् ! आपको अहंकार के क्षुद्र काल्पनिक जगत से निकालकर ठोस वास्तविकता की ओर आपका ध्यान दिलाने के नैतिक कर्तव्य ने मुझे यह चौथी पंक्ति जोड़ने पर विवश कर दिया।"

विनीत भाव से यह कवि उदभट्ट बाहर निकलकर राजा के सामने खड़े हो गये। उनके शब्द राजा भोज के अंतर्मन में गहरे उतर गये। राजा मोह-निद्रा से जाग उठे। उनका विशुद्ध, निर्मल विवेक जागृत हुआ और वे नश्वर वैभव का क्षुद्र अहं त्यागकर शाश्वत पद की प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़े।

अविनाशी आतम अमर, जग तातें प्रतिकूल।
ऐसी ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल।।

आत्मा सत्, चित्त और आनन्दस्वरूप है तथा शरीर असत्, जड़ और दुःखरूप है। आत्मा अमर, अपरिवर्तनशील है और शरीर मरणधर्मा, परिवर्तनशील है-ऐसा विवेक जिसका जग गया है वह परम विवेकी है।

'श्रीरामचरितमानस' में आता हैः

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।।

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।

जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब उसे सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय। विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) भगवान के चरणों में प्रेम होता है। मन, वचन और कर्म से भगवान के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है। (अयो.कां. 92.2-3)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सेवा की सुवास

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

उड़ीसा में कटक है। एक बार वहाँ प्लेग फैला। मच्छर और गंदगी के कारण लोग बहुत दुःखी थे। उड़िया बाजार में भी प्लेग फैला था। केवल बापूपाड़ा इससे बचा था। बापूपाड़ा में बहुत सारे वकील लोग, समझदार लोग रहते थे। वे घर के आँगन व आसपास में गंदगी नहीं रहने देते थे। वहाँ के कुछ लड़कों ने सेवा के लिए एक दल बनाया, जिसमें कोई 10 साल का था तो कोई 11 का, कोई 15 का तो कोई 18 साल का था। उस दल का मुखिया था एक 12 साल का किशोर।

उड़िया बाजार में हैदरअली नाम का एक शातिर गुंडा रहता था। बापूपाड़ा के लड़के जब उड़िया बाजार में सेवा करने आये तो हैदरअली को लगा कि 'बापूपाड़ा के वकीलों ने मुझे कई बार जेल भिजवाया है। ये लड़के बापूपाड़ा से आये है, हरामी हैं..... ऐसे हैं..... वैसे हैं....' ऐसा सोचकर उसने उनको भगा दिया। परंतु जो लड़कों का मुखिया था वह वापस नहीं गया। हैदरअली की पत्नी और बेटा भी प्लेग के शिकार हो गये थे। वह लड़का उनकी सेवा में लग गया। जब हैदरअली ने देखा कि लड़का सेवा में लगा है तो उसने पूछाः "तुमको डर नहीं लगा ?"

"मैं क्यों डरूँ ?"

"मैं हैदरअली हूँ। मैं तो बापूपाड़ा वालें को गालियाँ देता हूँ। सेवामंडल के लड़कों को मैंने अपना शत्रु समझकर भगा दिया और तुम लोग मेरी पत्नी व बच्चे की सेवा कर रहे हो ? बालक ! हम तुम्हारी इस हिम्मत और उदारता से बड़े प्रभावित हैं। बेटा ! मुझे माफ कर देन, मैंने तुम्हारी सेवा की कद्र नहीं की।"

"आप तो हमारे पितातुल्य हैं। माफी देने का अधिकार हमें नहीं है, हमें तो आपसे आशीर्वाद लेना चाहिए।

यदि कोई बीमार है तो हमें उसकी सेवा करनी चाहिए। आपकी पत्नी तो मेरे लिए मातातुल्य हैं और बेटा भाई के समान।"

हैदरअली उस बच्चे की निष्काम सेवा और मधुर वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि फूट-फूट कर रोया।

लड़के ने कहाः "चाचाजान ! आप फिक्र न करें। हमें सेवा का मौका देते रहें।

आज उस बच्चे का नाम दुनिया जानती है। वह बालक आगे चलकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नाम से सुविख्यात हुआ।

आप महान बनना चाहते हैं तो थोड़ी बहुत सेवा खोज लें। पड़ोस में जो सज्जन हैं, गरीब हैं उनकी सेवा खोज लें। इससे आपकी योग्यता का विकास होगा। सेवा से योग्यता का विकास ही सहज में होता है। सेवक योग्यता का विकास हो इस इच्छा से सेवा नहीं करता, उसकी योग्यता स्वतः विकसित होती है।

जो दिखावे के लिए सेवा नहीं करता, सस्नेह और सच्चाई से सेवा करता है, वह न चाहे तो भी भगवान उसकी योग्यता विकसित कर देते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सेवाकार्य तो करें लेकिन राग-द्वेष से प्रेरित होकर नहीं, अपितु दूसरे को मान देकर, दूसरे को विश्वास में लेकर सेवाकार्य करने से सेवा भी अच्छी तरह से होती है और सेवक की योग्यता भी निखरती है। सेवाभावी मनुष्य हर क्षेत्र में सफल और हर किसी का प्यारा हो सकता। निःस्वार्थ प्रभुसेवा व समाजसेवा से, ईश्वर के दैवी कार्य में सहभागी होने से देवत्व जगेगा। जिनके जीवन में सेवा व सत्संग नहीं है, वे लोग बड़ी दयनीय दशा को प्राप्त होते हैं। धनभागी तो वे हैं जो निःस्वार्थ सेवा करते हुए, ईश्वर और संतों के दैवी कार्य करते हुए अपने आत्मदेव का आनंद पाते हैं।

पूज्यश्री

कंजूसी नहीं करकसर

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

कंजूस उसे नहीं कहते हैं जो करकसर करता है, जो उचित जगह खर्च न करे उसे कंजूस कहते हैं। करकसर करना सदगुण है, कंजूसी दुर्गुण है।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू एक बार यात्रा करते-करते राँची पहुँचे। राँची पहुँचने पर उनके पैरों के तलवे पीड़ा से आक्रान्त हो गये। पीड़ा का कारण था कि उनकी चप्पल घिस गयी थी।

वे अहिंसक जूते अथवा चप्पल ही पहनते थे। पशु की जबरन हत्या कर उस चमड़े के बनाये गये जूते-चप्पल वे कभी नहीं पहनते थे।

राँची से 10-20 किलोमीटर दूर गांधी हाट से चप्पल लावी गयी। राजेन्द्र बाबू ने पूछाः "कितने रूपये की है ?"

"उन्नीस।"

"पिछले साल ग्यारह की थी, अभी उन्नीस की कैसे हो गयी ?"

"यह टीप-टॉप वाली है, फैशनेबल है।"

"पैरों में फैशन की क्या जरूरत ! यह चप्पल वापस ले जाओ, ग्यारह वाली ले आओ, आठ रूपये बच जायेंगे।"

सचिव कार से चप्पल वापस करने जा रहा था, उसे बोलेः "इधर आओ, तुम जाने आने में पेट्रोल जलाओगे। गाँव मे जो लोग प्रवचन सुनने आते हैं उनमें से किसी एक को दे देना, कल बदलकर ले आयेगा। आठ रूपये मेरे भारतवासियों के आँसू पोंछने में काम आयें, मैं फिजूल खर्च क्यों करूँ ?"

राजेन्द्र बाबू करकसर से जीते थे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्य संत श्री आसारामजी बापू करकसर से जीवनयापन करते हैं। आश्रम का कार्य व्यवहार करकसर से चलाकर दरिद्रनारायणों की सेवा करना यह पूज्य बापू जी का स्वाभाविक कर्म बन गया है। अपने पूज्य लीलाशाहजी महाराज भी करकसर से जीते थे। लालबहादुर शास्त्री हों, मालवीयजी हों अथवा गांधी जी, प्रत्येक महान व्यक्ति में यह सदगुण होता है।

सादा, सस्ता जीवन हो ओर ऊँचे विचार हों। मन को भगवदभाव से, भगवदसुख से भरते रहो और जेब को करकसर से छका रहने दो। घर को सादगी और स्नेह से, व्यवहार को प्रेम और प्रभुस्मृति से प्रभुपना बना दो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पं मालवीयजी के जीवन-प्रसंग

फिजूल में एक पैसा नहीं, सत्कार्य में लाखों सही......

महामना मदनमोहन मालवीय जी की बड़ी आकांक्षा थी कि काशी में हिन्दुओं का एक विश्वविद्यालय बने, जिसमें भारतीय संस्कृति के पवित्र, सर्वांगीण उन्नतिकारक वातावरण में छात्रों को शिक्षा मिले। वे इस उद्देश्य से 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के निर्माण-कार्य में जुटे थे। इस भगीरथ कार्य को सम्पन्न करने हेतु उन्हें प्रचुर धन की आवश्यकता थी। इसलिए वे समाज के धनसम्पन्न व्यक्तियों से मिलकर उनसे इस सत्कार्य में धन के सहयोग की प्रार्थना करते थे। उन्हें परोपकारी मानकर कई धनिक उन्हें सहयोग भी करते थे। प्रस्तुत है इस संबंध में उनके कुछ अनुभवः

मालवीयजी के एक मित्र उन्हें धन के सहयोग की अपेक्षा से एक बड़े व्यापारी के घर ले गये। आवाज देने पर सेठजी ने बैठक का द्वार खोला और दोनों अतिथियों को आदर से बिठाया। उस वक्त शाम हो गयी थी और अँधेरा छाने लगा था। बैठक में बिजली नहीं थी, अतः सेठजी ने अपने छोटे पुत्र को लालटेन जलाने को कहा। पुत्र लालटेन और दियासिलाई लेकर आया। उसने माचिस की एक तीली जलायी परंतु वह लालटेन तक आते-आते बुझ गयी। फिर दूसरी जलायी, वह भी बीच में ही बुझ गयी। जब तीसरी तीली का भी वही हाल हुआ, तब सेठजी लड़के पर नाराज होकर बोलेः "तुमने माचिस की तीन तीलियाँ नष्ट कर दीं। कितने लापरवाह हो !"

उन दिनों माचिस की एक डिब्बी दो पैसे में आती थी। लड़के को डाँटकर सेठजी भीतर गये, शायद अतिथियों से लिए पानी लेने। उनके अंदर जाने पर मालवीय जी ने अपने मित्र की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि देखा, मानो कह रहे हों कि 'इस सेठ से कुछ पाने की आशा मत करो, क्योंकि वह तो इतना कंजूस है कि माचिस की तीन तीलियों के नष्ट हो जाने पर लड़के को डाँटता है।' संकेत में ही मित्र ने मालवीय जी को सहमति जतायी और दोनों बैठक से बाहर निकले। इतने में सेठ जी आ गये। वे चकित होकर बोलेः "अरे, आप चल क्यों दिये ? बैठिये, काम तो बताइये।" दोनों सज्जन पुनः बैठक में बैठ गये।

मालवीयजी के मित्र ने उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण और उसके उद्देश्य के बारे में बताया। सेठजी ने कहाः "यह काम तो बड़ा अच्छा है।" इतना कहकर सेठजी ने तुरंत पच्चीस हजार रूपये (जो आज के कई लाख रूपये से भी अधिक कीमत रखते थे) निकालकर रख दिये। यह देखकर मालवीय जी और उनके मित्र चकित हो गये। मालवीय जी ने सेठ जी से कहाः "एक बात पूछूँ ? अभी आपने लड़के को माचिस की तीन तीलियाँ नष्ट कर देने की वजह से डाँटा था, जबकि तीलियों का मूल्य नहीं के बराबर है लेकिन हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए आपने तुरंत पच्चीस हजार रूपये दे दिये। इन दोनों व्यवहारों में इतना अंतर क्यों ?"

सेठजी हँसकर बोलेः "महामना ! मेरा सोचना ऐसा है कि व्यर्थ तो माचिस की एक तीली भी नहीं जानी चाहिए। लापरवाही से छोटी-से-छोटी वस्तु को भी नष्ट नहीं करना चाहिए लेकिन किसी शुभ कार्य में हजारों रूपये सहर्ष दे देने चाहिए। दोनों बातें अपनी जगह ठीक हैं। इनमें कोई विरोध नहीं।"

कितनी ऊँची समझ के धनी लोग थे भारत में ! आज भी ऐसे लोग इस भूमि पर हैं किंतु उनकी संख्या लगातार घटती जा रही है। 'यूज़ एंड थ्रो' अर्थात् किसी भी वस्तु का एक बार इस्तेमाल करो और उसमें एक खरोंच भी आ जाय तो उसे फेंक दो और नयी ले आओ- इस प्रकार की पश्चिमी देशों की बिगाड़ को बढ़ावा देने वाली विचार-प्रणाली अब भारत में भी अपने पैर जमा रही है। हमें चाहिए की करकसर से जीवन जियें, वस्तुओं का पूर्ण उपयोग करें। उनका थोड़ा भी बिगाड़ न होने दें और अपने धन को सत्कार्यों में लगायें, भगवान के रास्ते जाने में और जाने वालों की सेवा में लगायें। इस पंक्ति को सभी अपने जीवन में उतारें-

फिजूल में एक पैसा नहीं, सत्कार्य में लाखों सही।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

एक दहेज ऐसा भी !

एक बार मालवीय जी के पास एक धनी सेठ अपनी कन्या के विवाह का निमन्त्रण-पत्र देने आये। संयोग से जिस युवक के साथ उनकी कन्या का विवाह होने वाला था, वह मालवीय जी का शिष्य था। मालवीय जी ने सेठ जी से कहाः "प्रभु की आप पर कृपा है। सुना है कि आप इस विवाह पर लाखों रूपये खर्च करने वाले हैं। इससे धन प्रदर्शनादि में व्यर्थ ही चला जायेगा। वह राशि आप हमें ही दहेज में दे दें ताकि इससे हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण का शेष कार्य पूरा हो सके। लड़के का गुरु होने के नाते मैं यह दक्षिणा लोकमांगल्य के कार्य के लिए आपसे मांग रहा हूँ।" मालवीय जी के इस कथन का उन सेठ

पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने विवाह में ढेर सारा खर्च करने का अपना विचार बदल दिया। उन्होंने अत्यन्त सादगी से न केवल आदर्श विवाह किया अपितु विश्वविद्यालय में अनेक भवन भी बनवा दिये। लोगों ने भी कहाः 'दहेज हो तो ऐसा !'

निंदा का केन्द्र बनी हुई दहेज जैसी कुप्रथा को भी मालवीय जी की जनहित की पवित्र भावना ने एक नया ही रूप प्रदान किया कि शादियों में लाखों रूपये खर्च करने वाले व लाखों रूपये वर या वधू पक्ष को दहेज में देने वाले लोग यदि इन कार्यों को सादगी से सम्पन्न कर उसी धन को समाजसेवा के दैवी कार्य में लगायें तो उनका व समाज का कितना मंगल होगा ! समाज-ऋण से कुछ हद तक उऋण होने का कितना दिव्य आनंद उन्हें प्राप्त होगा ! नवविवाहित दम्पति को समाज के कितने आशीर्वाद प्राप्त होंगे तथा उन्हें अपने गृहस्थ-जीवन में समाजसेवा की कितनी सुंदर प्रेरणा मिलेगी !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हंटरबाज थानेदार से संत रणजीतदास

पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

एक बार रणजीतसिंह नाम का सिपाही गश्त लगाते-लगाते किन्हीं संत के द्वार पहुँचा और संत से कहाः

"बाबा ! पाय लागूँ।"

बाबाः "इतनी देर रात को क्यों आये हो ?"

"आपके दर्शन करने।"

"नहीं, सच बताओ क्यों आये हो ?"

"बाबा ! मैं इंटर पास भटक रहा हूँ और थानेदार मजे से पलंग पर आराम कर रहा है। आपकी कृपा हो जाये तो मैं थानेदार बन जाऊँगा।"

"अच्छा समझो, तुम थानेदार बन गये तो मुझे तो भूल जाओगे।"

"नहीं बाबा ! रणजीतसिंह आपके चरणों में सिर झुकायेगा। थानेदार बनूँगा तब भी आपकी आज्ञा पालूँगा।"

"कब पहुँचोगे थाने पर ?"

"बाबा ! गश्त लगाते-लगाते तीसरे दिन मेरी ड्यूटी वहाँ लगेगी।"

"तो जाओ, जाकर थानेदार बनो। तुम्हें वहीं थानेदारी का हुक्म आया मिलेगा।"

"बाबा ! आप लेख को मेख कर सकते हो, बेमुकद्दरवाले को मुकद्दरवाला बना सकते हो। आप काल के मुँह में पड़े हुए को अकाल ईश्वर की तरफ लगा सकते हो और नरक में जाने वाले जीव को दीक्षा देकर उसके नरक के बँधन काटकर स्वर्ग की यात्रा करा सकते हो। संतों के हाथ में भगवान ने गजब की ताकत दी है ! हे बाबा ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो।"

रणजीतसिंह बाबा को दण्डवत प्रणाम कर विदा हुआ। तीसरे दिन थाने पहुँचकर जब उसने थानेदार को सलाम किया तो थानेदार कुर्सी से उठा और बोलाः "रणजीतसिंह ! अब तुम सिपाही नहीं रहे, थानेदार हो गये हो। यह लो सरकारी हुक्मनामा। मेरी बदली दूसरे थाने में

हो गयी है।" रणजीतसिंह ने मन-ही-मन बाबा को प्रणाम किया व थानेदार का दायित्व संभाला।

कोई छोटा आदमी मुफ्त में बड़ा बन जाये, बिना मेहनत के ऊँचे पद को पा ले तो अपना असली स्वभाव थोड़े ही छोड़ देता है। रणजीतसिंह ने भी अपना असली स्वभाव दिखाना शुरू कर दिया। वह बड़ा रोबीला, हंटरबाज थानेदार हो गया। लोग 'त्राहिमाम्' पुकार उठे कि 'यह थानेदार है या कोई जालिम ! झूठे केस बना देता है, अमलदारी का उपयोग प्रजा की सेवा के बदले प्रजा के शोषण में करता है।'

एकाध वर्ष बीता-न-बीता सारा इलाका उसके जुल्म से थरथराने लगा। बाबा ने ध्यान लगाकर देखा कि 'रणजीत सिंह कर्म को योग बना रहा है या बंधन बना रहा है अथवा कर्मों के द्वारा खुद को नारकीय योनियों की तरफ ले जा रहा है।' वास्तविकता जानकर हृदय को बहुत पीड़ा हुई।

बाबा पहुँच गये थाने पर। उस समय रणजीतसिंह सिगरेट पी रहा था। बाबा को देख सिगरेट फेंक दी और बोलाः "बाबा ! पाय लागूँ। आपकी कृपा से मैं थानेदार बन गया हूँ।"

"थानेदार तो बन गये हो लेकिन मुझे कुछ दक्षिणा दोगे कि नहीं ?"

"बाबा ! आप हुक्म करो। आपकी बदौलत मैं थानेदार बना हूँ, मुझे याद है। मैं आपको दक्षिणा दूँगा।"

"पाँच सेर बिच्छू मँगवा दो।"

"पाँच सेर बिच्छू !.... अच्छा बाबा ! मैं मंगवा देता हूँ। सिपाहियो। इधर आओ। अपने-अपने इलाके में जाकर बिच्छू इकट्ठे करो और कल शाम तक पाँच सेर बिच्छू हाजिर करना, नहीं तो पता है..."

बाबा ने भी सुन रखा था, हंटरबाज थानेदार है। जिस किसी पर कहर बरसा देता है, पैसे लेकर किसी पर भी झूठे केस कर देता है।

जो निर्दोष पर केस करता है अथवा निर्दोष को मारता है, उसे बहुत फल भुगतना पड़ता है। बाबा ने सोचा, 'इसने मेरे आगे सिर झुकाया फिर यमदूतों की मार खाये, अच्छा नहीं।'

सिपाही बेचारे काँपते-काँपते गये। इधर-उधर खूब भटके और दूसरे दिन पाँच-छः बिच्छू ले आये।

रणजीतसिंहः "अरे मूर्खो ! पाँच सेर बिच्छू की जगह केवल पाँच-छः बिच्छू !"

"साहब ! नहीं मिलते हैं।"

तब तक बाबा भी आ गये और बोलेः "कहाँ हैं पाँच सेर बिच्छू ?"

"बाबा नहीं मिल पाये।"

"तू अपने को इस इलाके का बड़ा थानेदार, तीसमारखाँ क्यों मानता है रे, चल, मैं तेरे को बिच्छू दिलाता हूँ। इकबाल हुसैन बड़ा रोबीला, हंटरबाज थानेदार था। झूठे केस करने में माहिर था वह बदमाश। चल, उसकी कब्र खोद।"

जुल्म करना पाप है, जुल्म सहना दुगना पाप है। आप जुल्म करना नहीं, जुल्म सहना नहीं। कोई जुल्म करता है तो संगठित होकर अपने साथियों की, अपने मुहल्ले की, अपने बच्चों की रक्षा करना आपका कर्तव्य है।

आप सच्चे हृदय से भगवान को पुकारो और ओंकार का जप करो। मजाल है कि दुश्मन अथवा जुल्मी, आततायी आप पर जुल्म करे, हरगिज नहीं !

थानेदार इकबाल हुसैन की कब्र खोदी गयी। देखा कि लाश के ऊपर-नीचे हजारों बिच्छू घूम रहे हैं। यह घटित घटना है।

बाबाः "भर ले बिच्छू। दो-तीन मटके ले जा।"

"बाबा ! यह क्या, इतने सारे बिच्छू !"

"रणजीतसिंह ! जो जुल्म करता है, उसका मांस बिच्छू ही खाते हैं और वह बिच्छू योनि में ही भटकता है। देख ले, तू उसी रास्ते जा रहा है।"

"राम-राम-राम ! क्या हंटरबाज थानेदार होने का फल यही है ?"

"यह नहीं तो और क्या है !"

जिथ साईं दा हक तुराड़ा दोह सवाबां तुले
उथां सभु हिसाब भरेसीं क्या पतशाह क्या गोले
सिर कामल उत वेदें कंबदै कल क्या करसी मोले
लेखो कंहंदा जोर न चले अगऊं आदा बोले।

अर्थात् जहाँ ईश्वर के न्याय की तराजू पापों और पुण्यों का तकाजा करती है, वहाँ राजा ह या प्रजा प्रत्येक को हिसाब देना है। वहाँ तो कामिल पुरुष (परमात्मा के प्यारे) भी कुछ नहीं कह सकेंगे।

कर्म की गति बड़ी गहन है। शुभ-अशुभ कर्म का फल मनुष्य को अवश्य भुगतना पड़ता है।

"बाबा ! फिर.....?"

"फिर क्या, पहले के कर्म काट ले, अभी से ईश्वर के रास्ते चल। हंटरबाज बनकर, रिश्वत लेकर, झूठे केस बनाकर देख लिया, अब सच्चा केस बना, ईश्वर को पाने के रास्ते चल। रणजीतसिंह ! **सुमति कुमति सब उर रहहिं**। सज्जनता-दुर्जनता सबके अंदर रहती है। तुमने दुर्जनता जगाकर देख ली, अब सज्जनता को अपना ले। ले दीक्षा और गंगा-किनारे जा। दे दे इस्तीफा !"

राजा भर्तृहरि राजपाट छोड़कर गुरु गोरखनाथ के चरणों में चले गये, दीक्षा लेकर साधना की और महापुरुष हो गये। वह बहादुर थानेदार भी गुरु की आज्ञा मानकर बारह साल हरिद्वार में रहा और रणजीतसिंह सिपाही से संत रणजीतदास बन गया, भगवान की भक्ति करते हुए अमर पद को पा लिया, बिल्कुल पक्की बात है।

मैं तो रणजीतसिंह सिपाही को शाबाशी दूँगा, जो गुरूकृपा से एक साधारण सिपाही में से थानेदार बना और गुरु की आज्ञा का पालन किया तो संतों की जिह्वा तक उसका नाम पहुँच गया। कितना भाग्यशाली रहा होगा वह !

मानना पड़ता है, अच्छाइयाँ-बुराइयाँ सबके अंदर होती हैं, बुद्धिमान वह है जो सत्संग करके अच्छाइयाँ बढ़ाता जाये और बुराईयाँ छोड़ता जाये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ज्ञान व योग-सामर्थ्य की प्रतिमूर्तिः स्वामी लीलाशाहजी

सर्दी का मौसम था। ब्रह्मवेत्ता संत स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज अपने अस्थायी निवास पर प्रवचन कर रहे थे। अचानक जाड़े से थर-थर काँपती हुई एक बुढ़िया वहाँ पहुँची और हाथ जोड़ के निवेदन करने लगीः "औ महाराज ! मेरा भी कुछ भला करो। मैं ठंड के मारे मर रही हूँ।"

स्वामी जी ने अपने सेवक को बुलाकर कहा कि "कल जो रेशम बिस्तर मिला था, वह इसे दे दो।" शिष्य ने सारा बिस्तर, जिसमें दरी, तकिया, गद्दा व रजाई थी, लाकर उस बुढ़िया को दे दिया और वह दुआएँ देती चली गयी। जिस भक्त ने यह बिस्तर स्वामी जी को दिया था, उससे रहा न गया। वह बोलाः "स्वामी ! कम से कम एक दिन तो उस बिस्तर पर विश्राम करते तो मेरा मन प्रसन्न हो जाता।"

स्वामी जी बोलेः "जिस पल बिस्तर तुमने मुझे दिया, उस पल से वह बिस्तर तुम्हारा नहीं रहा और जो तुमने दान में दिया वह दान में ही तो गया ! दुनिया में तेरा मेरा कुछ नहीं, जो जिसके नसीब में होगा वह उसे मिलेगा।" इस प्रकार भक्तों ने अद्वैत ज्ञान, वैराग्य एवं परदुःखकातरता का पाठ केवल पढ़ा ही नहीं, वह जीवन में किस प्रकार झलकना चाहिए यह प्रत्यक्ष देखा भी।

एक बार स्वामी जी ने एक इंजीनियर को बुलाया और कहा कि "तुम इंजीनियर हो, आदिपुर (गुज.) की कुटिया के निकट कुआँ खोदना है। यह कार्य तुम अपने ऊपर ले लो।"

उसने कहाः "स्वामी जी ! इस क्षेत्र में जितने कुएँ खुदवाये गये हैं, उनसे खारा पानी निकलता है। यह खारी भूमि है, कुएँ का विचार छोड़ दें।"

स्वामी जी ने कहाः "उसकी चिंता मत करो। अपनी विद्या का उपयोग कर तुम मुझे बताओ कि कुआँ कहाँ खुदवाना चाहिए।"

इन्जीनियर ने नक्शा बनाकर दिखाया। उसे देखकर स्वामी जी मुस्कराये और बोलेः "शाबाश ! तुम्हारे नक्शे और मेरी सोच में मात्र एक फुट का फर्क है।" फिर उन्होंने निशान बनाया और 'जय राम जी की' कहकर काम आरम्भ करवा दिया। पानी मीठा निकला और वातावरण में जयघोष गूँजाः "स्वामी लीलाशाहजी की जय !"

एक बार स्वामी जी रस्सी के बल सुलझा रहे थे। पूछने पर बोले कि "भारत के दुश्मनों के बल निकाल रहा हूँ"। उन दिनों भारत-चीन युद्ध चल रहा था। दूसरे दिन समाचार आया कि "युद्ध समाप्त हो गया और दुश्मनों का बल निकल गया !"

ब्रह्मनिष्ठ योगियों को भूत, वर्तमान एवं भविष्य काल-ये तीनों हाथ पर रखे आँवले की तरह प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए उनके पावनि सान्निध्य से उनके सत्य-संकल्प और आशीर्वाद का बेजोड़ लाभ मिलता ही है लेकिन मार्गदर्शन में चलने वालों का तो परम कल्याण होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्य संत श्री आसाराम जी बापू अपने सदगुरु भगवत्पाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का एक पावन संस्मरण बताते हुए कहते हैं- गुरुजी जहाँ रोज बैठते थे वहाँ आगे एक जंगली पौधा था, जिसे बिच्छू का पौधा कहते हैं। उसके पत्तों को यदि हम छू लें तो बिच्छू के काटने जैसी पीड़ा होती है। मैंने सोचा, 'यह बिच्छू का पौधा बड़ा हो गया है। अगर यह गुरुदेव के श्रीचरणों को अथवा हाथों को छू जायेगा तो गुरुदेव के शरीर को पीड़ा होगी।' मैंने श्रद्धा और उत्साहपूर्वक सावधानी से उस पौधे को उखाड़कर दूर फेंक दिया। गुरुजी ने दूर से यह देखा और मुझे जोर से फटकाराः "यह क्या करता है !"

"गुरुजी ! यह बिच्छू का पौधा है। कहीं छू न जाय......"

"बेटा ! मैं रोज यहाँ बैठता हूँ.... सँभलकर बैठता हूँ... उस पौधे में भी प्राण हैं। उसे कष्ट क्यों देना ! जा, कहीं गड्डा खोदकर उस पौधे को फिर से लगा दे।"

महापुरुषों का, सदगुरुओं का हृदय कितना कोमल होता है !

वैष्णवजन तो तैने रे कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे...
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत-सेवा का फल

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

तैलंग स्वामी बड़े उच्चकोटि के संत थे। वे 280 साल तक धरती पर रहे। रामकृष्ण परमहंस ने उनके काशी में दर्शन किये तो बोलेः "साक्षात् विश्वनाथजी इनके शरीर में निवास करते हैं।" उन्होंने तैलंग स्वामी को 'काशी के विश्वनाथ' नाम से प्रचारित किया।

तैलंग स्वामी का जन्म दक्षिण भारत के विजना जिले के होलिया ग्राम में हुआ था। बचपन में उनका नाम शिवराम था। शिवराम का मन अन्य बच्चों की तरह खेलकूद में नहीं लगता था। जब अन्य बच्चे खेल रहे होते तो वे मंदिर के प्रांगण में अकेले चुपचाप बैठकर एकटक आकाश की ओर या शिवलिंग की ओर निहारते रहते। कभी किसी वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे ही समाधिस्थ हो जाते। लड़के का रंग-ढंग देखकर माता-पिता को चिंता हुई कि कहीं यह साधु बन गया तो ! उन्होंने उनका विवाह करने का मन बना लिया। शिवराम को जब इस बात का पता चला तो वे माँ से बोलेः "माँ ! मैं विवाह नहीं करूँगा, मैं तो साधु बनूँगा। अपने आत्मा की, परमेश्वर की सत्ता का ज्ञान पाऊँगा, सामर्थ्य पाऊँगा।" माता-पिता के अति आग्रह करने पर वे बोलेः "अगर आप लोग मुझे तंग करोगे तो फिर कभी मेरा मुँह नहीं देख सकोगे।"

माँ ने कहाः "बेटा ! मैंने बहुत परिश्रम करके, कितने-कितने संतों की सेवा करके तुझे पाया है। मेरे लाल ! जब तक मैं जिंदा रहूँ तब तक तो मेरे साथ रहो, मैं मर जाऊँ फिर तुम साधु हो जाना। पर इस बात का पता जरूर लगाना कि संत के दर्शन और उनकी सेवा का क्या फल होता है।"

"माँ ! मैं वचन देता हूँ।"

कुछ समय बाद माँ तो चली गयी भगवान के धाम और वे बन गये साधु। काशी में आकर बड़े-बड़े विद्वानों, संतों से सम्पर्क किया। कई ब्राह्मणों, साधु-संतों से प्रश्न पूछा लेकिन किसी ने ठोस उत्तर नहीं दिया कि संत-सान्निध्य और संत-सेवा का यह-यह फल होता है। यह तो जरूर बताया कि

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध।।

परंतु यह पता नहीं चला कि पूरा फल क्या होता है। इन्होंने सोचा, 'अब क्या करें ?'

किसी साधु ने कहाः "बंगाल में बर्दवान जिले की कटवा नगरी में गंगाजी के तट पर उद्दारणपुर नाम का एक महाश्मशान है, वहीं रघुनाथ भट्टाचार्य स्मृति ग्रन्थ लिख रहे हैं। उनकी स्मृति बहुत तेज है। वे तुम्हारे प्रश्न का जवाब दे सकते हैं।"

अब कहाँ तो काशी और कहाँ बंगाल, फिर भी उधर गये। रघुनाथ भट्टाचार्य ने कहाः "भाई ! संत के दर्शन और उनकी सेवा का क्या फल होता है, यह मैं नहीं बता सकता। हाँ, उसे जानने का उपाय बताता हूँ। तुम नर्मदा-किनारे चले जाओ और सात दिन तक मार्कण्डेय चण्डी का सम्पुट करो। सम्पुट खत्म होने से पहले तुम्हारे समक्ष एक महापुरुष और भैरवी उपस्थित होगी। वे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।"

शिवरामजी वहाँ से नर्मदा किनारे पहुँचे और अनुष्ठान में लग गये। देखो, भूख होती है तो आदमी परिश्रम करता है और परिश्रम के बाद जो मिलता है न, वह पचता है। अब आप लोगों को ब्रह्मज्ञान की तो भूख है नहीं, ईश्वरप्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना नहीं है तो कितना सत्संग मिलता है, उससे पुण्य तो हो रहा है, फायदा तो हो रहा है लेकिन साक्षात्कार की ऊँचाई नहीं आती। हमको भूख थी तो मिल गया गुरुजी का प्रसाद।

अनुष्ठान का पाँचवाँ दिन हुआ तो भैरवी के साथ एक महापुरुष प्रकट हुए। बोलेः "क्या चाहते हो ?" शिवरामजी प्रणाम करके बोलेः "प्रभु ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि संत के दर्शन, सान्निध्य और सेवा का कया फल होता है ?"

महापुरुष बोलेः "भाई ! पूरा फल तो मैं नहीं बता सकता हूँ।"

देखो, यह हिन्दू धर्म की कितनी सच्चाई है। हिन्दू धर्म में निष्ठा रखने वाला कोई भी गप्प नहीं मारता कि ऐसा है, ऐसा है। काशी में अनेक विद्वान थे, कोई गप्प मार देता ! लेकिनि नहीं, सनातन धर्म में सत्य की महिमा है। आता है तो बोलो, नहीं आता तो नहीं बोलो।

शिवस्वरूप महापुरुष बोलेः "भैरवी ! तुम्हारे झोले में जो तीन गोलियाँ पड़ी हैं, वे इनको दे दो।"

फिर वे शिवरामजी को बोलेः "इस नगर के राजा के यहाँ संतान नहीं है। वह इलाज कर-कर के थक गय है। ये तीन गोलियाँ उस राजा की रानी को खिलाने से उसको एक बेटा होगा, भले उसके प्रारब्ध में नहीं है। वही नवजात शिशु तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देगा।"

शिवरामजी वे तीन गोलियाँ लेकर चले। नर्मदा किनारे जंगल में, आँधी-तूफानों के बीच पेड़ के नीचे सात दिन के उपवास, अनुष्ठान से शिवरामजी का शरीर कमजोर पड़ गया था। रास्ते में किसी बनिया की दुकान से कुछ भोजन किया और एक पेड़ के नीचे आराम करने

लगे। इतने में एक घसियारा आया। उसने घास का बंडल एक ओर रखा। शिवरामजी को प्रणाम किया, बोलाः "आज की रात्रि यहीं विश्राम करके मैं कल सुबह बाजार में जाऊँगा।"

शिवरामजी बोलेः "हाँ, ठीक है बेटा ! अभी तू जरा पैर दबा दे।"

वह पैर दबाने लगा और शिवरामजी को नींद आ गयी तो वे सो गये। घसियारा आधी रात तक उनके पैर दबाता रहा और फिर सो गया। सुबह हुई, शिवरामजी ने उसे पुकारा तो देखा कि वह तो मर गया है। अब उससे सेवा ली है तो उसका अंतिम संस्कार तो करना पड़ेगा। दुकान से लकड़ी आदि लाकर नर्मदा के पावन तट पर उसका क्रियाकर्म कर दिया और नगर में जा पहुँचे।

राजा को संदेशा भेजा कि "मेरे पास दैवी औषधि है, जिसे खिलाने से रानी को पुत्र होगा।"

राजा ने इन्कार कर दिया कि "मैं रानी को पहले ही बहुत सारी औषधियाँ खिलाकर देख चुका हूँ परंतु कोई सफलता नहीं मिली।"

शिवरामजी ने मंत्री से कहाः "राजा को बोलो जब तक संतान नहीं होगी, तब तक मैं तुम्हारे राजमहल के पास ही रहूँगा।" तब राजा ने शिवराम की औषधि ले ली।

शिवरामजी ने कहाः "मेरी एक शर्त है कि पुत्र जन्म लेते ही तुरन्त नहला धुलाकर मेरे सामने लाया जाय। मुझे उससे बातचीत करनी है, इसीलिए मैं इतनी मेहनत करके आया हूँ।"

यह बात मंत्री ने राजा को बतायी तो राजा आश्चर्य से बोलाः "नवजात बालक बातचीत करेगा ! चलो देखते हैं।"

रानी को वे गोलियाँ खिला दीं। दस महीने बाद बालक का जन्म हुआ। जन्म के बाद बालक को स्नान आदि कराया तो वह बच्चा आसन लगाकर ज्ञान मुद्रा में बैठ गया। राजा की तो खुशी का ठिकाना न रहा, रानी गदगद हो गयी कि 'यह कैसा बबलू है कि पैदा होते ही ॐऽऽऽ करने लगा ! ऐसा तो कभी देखा-सुना नहीं।'

सभी लोग चकित हो गये। शिवरामजी के पास खबर पहुँची। वे आये, उन्हें भी महसूस हुआ कि 'हाँ, अनुष्ठान का चमत्कार तो है !' वे बालक को देखकर प्रसन्न हुए, बोलेः "बालक ! मैं तुमसे एक सवाल पूछने आया हूँ कि संत-सान्निध्य और संत-सेवा का क्या फल होता है ?"

नवजात शिशु बोलाः "महाराज, मैं तो एक गरीब, लाचार, मोहताज घसियारा था। आपकी थोड़ी सी सेवा की और उसका फल देखिये, मैंने अभी राजपुत्र होकर जन्म लिया है और पिछले जन्म की बातें सुना रहा हूँ। इसके आगे और क्या-क्या फल होगा, इतना तो मैं नहीं जानता हूँ।"

ब्रह्म का ज्ञान पाने वाले, ब्रह्म की निष्ठा में रहने वाले महापुरुष बहुत ऊँचे होते हैं परंतु उनसे भी कोई विलक्षण होते हैं कि जो ब्रह्मरस पाया है वह फिर छलकाते भी रहते है। ऐसे महापुरुषों के दर्शन, सान्निध्य वे सेवा की महिमा तो वह घसियारे से राजपुत्र बना नवजात बबलू बोलने लग गया, फिर भी उनकी महिमा का पूरा वर्णन नहीं कर पाया तो मैं कैसे कर सकता हूँ !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महापुरुषों का जीवन प्रतिपल, देता है संदेश सभी को ।
हम भी सुरभित कर सकते हैं, अपने छोटे-से जीवन को ।
अतएव चलो हम जुट जायें, अपना भविष्य स्वयं गढ़ने को ।
महापुरुषों के जीवन से सीखें, उन्नति की सीढ़ी चढ़ने को ।

आत्मवत् पश्येत् सर्वभूतेषु...

एक बार पूज्य बापूजी डीसा में बनास नदी के किनारे बैठे हुए थे। उसी समय उन्हें जख्मी पैरवाला एक व्यक्ति नदी किनारे चिंतित-सा दिखाई दिया। वह नदी पार अपने गाँव जाना चाहता था। पूज्यश्री ने उसे अपने कंधे पर बैठाकर नदी पार करा दी। घाव से पीड़ित पैरवाला वह गरीब मजदूर दंग रह गया ! मजदूर ने अपना दुखड़ा सुनाते हुए पूज्य बापूजी से कहा : "पैर पर जख्म होने से ठेकेदार ने काम पर आने से मना कर दिया है। कल से मजदूरी नहीं मिलेगी।"

पूज्य बापूजी ने कहा : "मजदूरी न करना, मुकादमी करना। जा, मुकादम हो जा।"

दूसरे दिन उस मजदूर को ज्यादा तनख्वाहवाली, हाजिरी भरने की आरामदायक मुकादमी की नौकरी ठेकेदार ने दे दी। किसकी प्रेरणा से दी, किसके संकल्प से दी यह मजदूर से छिपा न रह सका। कंधे पर बैठाकर नदी पार करानेवाले ने रोजी-रोटी की चिंता से भी पार कर दिया तो वह मजदूर प्रभु का भक्त बन गया और गद्गद कंठ से डीसावासियों को अपना अनुभव सुनाने लगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ